भारतीय दर्शन परम्परा

डॉ. हरवंशलाल ओबराय

सम्पादक एवं संकलनकर्ता

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम,
भक्तानन्द शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139

ISBN 978-93-84133-13-9

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- श्री सुशील कुमार ताम्बी
  प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
  A/3 आर्य नगर
  एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
  मुरलीपुरा, जयपुर 302039
  फोन : 0141-2233765 मो. : 09829547773
- **ज्ञान गंगा प्रकाशन**
  पाथेय भवन,
  बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
  दूरभाष : 0141-2371563
- **अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना**
  आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
  नई दिल्ली 110055
  फोन : 011-23675667
- **हिन्दू राइटर्स फोरम**
  129-बी, डी.डी.ए. फ्लैट्स (एम.आई.जी.)
  राजौरी गार्डन, नई दिल्ली 110027
- **जागृति प्रकाशन**
  श्री कृष्णानन्द सागर
  एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
  फोन : 0120-2538101 मो. : 09871143768

प्रथम संस्करण : 2015 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : एक सौ रुपये मात्र

आवरण : गौरीशंकर आचार्य

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

Bharatiy Darshan Parampara (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri ₹ 100

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं। संस्कृति का विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्‌भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरि

आओ! शिष्य बनें

भारत विश्वगुरु था। इसकी परा-अपरा विद्या को प्राप्त करने धरती के कोने-कोने से जिज्ञासु-मुमुक्षु इस पुण्य-भूमि में शिष्य-भाव से आते थे। इसी भूमि से ज्ञान-दीप ले त्यागी-तपस्वी-विद्वान् साधक, आचार्य विदेशों में जाते और ज्ञान-प्रकाश से वहाँ की संस्कृति के अँधियारे को दूर करते थे। इन ज्ञान-वितरकों के प्रेरक ऋषि थे, आत्मज्ञान ही इनका बल था, प्रभुप्रेम ही इनकी गति थी।

कालान्तर में भीषण युद्ध हुए—गृहयुद्ध भी व बाह्य आक्रमण भी। फलतः भारत की क्षात्र-शक्ति निर्बल हुई, बुद्धि-शक्ति अरक्षित हुई, अर्थ-तन्त्र ध्वस्त हुआ, लोक-जीवन दमित व अस्त-व्यस्त हुआ। ऐसे जर्जरित राष्ट्र का परतन्त्र होना स्वाभाविक था। भारत का स्थूल कलेवर पराजित हुआ था, मन व आत्मा नहीं। इसके स्थूल कलेवर में भी स्वातन्त्र्य-रक्त अल्पांश में प्रवाहित होता रहा था। सत्संग-स्वाध्याय, पर्व-परिवार, तीर्थ-तीर्थाटन आदि सांस्कृतिक संस्थानों द्वारा यह भारतीय संस्कृति प्राणन करती रही, मरी नहीं। किन्तु भीषण अत्याचारों के कारण इसका आत्मगीत दिशा-दिशा में मुखरित नहीं हुआ। कुछेक विभूतियों ने आविर्भूत होकर इसके आत्म-दर्शन का उद्घोष किया, किन्तु उसका संचार इसके सर्वांग में न हो सका। दीर्घ परतन्त्रता के पश्चात् प्राप्त तथाकथित स्वतन्त्रता भी दिखावे की सिद्ध हुई। इसकी आत्मा अभी भी मुक्त साँसों के लिये छटपटाती है। इसके पूत अभी भी याचक हैं, उच्छिष्टभोजी हैं, अन्धानुकरण में रत हैं। इस आन्तरिक परतन्त्रता से मुक्त होना ही होगा, क्योंकि इस संस्कृति का स्वधर्म ही आत्मोन्मुखी है, ईश्वरोन्मुखी है। इसके स्वभाव में चारों वर्णों का सामरस्य है। अपने स्वभाव की विरुद्ध दिशा में बहना इसके लिये भयावह है। किन्तु यह अपनी स्वदिशा में गतिमान कैसे हो? कैसे यह अपने विश्वगुरु पद को प्राप्त करे?

यह संस्कृति अपने गौरवपूर्ण पद को प्राप्त कर सके—इसके लिये प्रत्येक भारतीय को अपने स्वधर्म को पहचानना होगा। उसको लेकर उसे अपनी संस्कृति से एक लय में रहते हुए स्वकर्म करना होगा। उस स्वकर्म से उसे जगद्गुरु की शिष्यभाव से अर्चना करनी होगी। यों शिष्यभाव की अनगिन धाराएँ मिल कर एक प्रबल पवित्र प्रवाह बनेगा और तब फिर यह संस्कृति विश्वगुरु रूपिणी गंगा होगी, सृष्टि-मूल के गोमुख को पूर्णानन्द उदधि से जोड़ने वाली, मानव मात्र को तारने वाली भागीरथी होगी।

आओ! शिष्य बनें।

स्वात्म-संस्कृति के उन्नयन के लिये भगीरथ-प्रयास करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज

प्रकाशकीय

दर्शन के क्षेत्र में भारत विश्व का शिरोमणि देश है। वास्तव में भारत ने अन्तर्जगत् में डुबकी लगाकर जिन अमूल्य विचार-रत्नों की उपलब्धि प्राप्त की है उसके सम्मुख शेष विश्व की समस्त सम्पदा फीकी पड़ जाती है।

इस पुस्तक में भारतीय दर्शन परम्परा के कालातीत स्वरूप को उसके वैज्ञानिक स्वरूप को आज के आधुनिक सन्दर्भ में समझने का प्रयास किया गया है। कैसे भारतीय दार्शनिक परम्परा चिर प्राचीन होते हुए भी नित्य नवीन, आधुनिक व शाश्वत है।

इसी सन्दर्भ में दर्शन की मूलभूत मान्यताएँ क्या हैं? भारतीय दर्शन की धाराएँ कितने प्रकार की हैं, भारतीय दर्शन के मूलभूत प्रश्न क्या हैं? भौतिकवाद क्या है, उसकी परिणति क्या है? द्वैतवाद क्या है, उसकी परिणति क्या है? चेतनवाद क्या है, उसके कितने प्रकार हैं? उसका सबसे उत्कृष्ट, परिपूर्ण रूप शंकराचार्य के अद्वैत मत में मिलता है जिसकी ओर वैज्ञानिक जगत भी झुक रहा है। आकृष्ट हो रहा है। बौद्ध आधार शास्त्र क्या है, भारतीय नीति शास्त्र के दार्शनिक आधार क्या है? वेदान्त की विज्ञान चुनौती एवं भारतीय दर्शन द्वारा आधुनिक समस्याग्रस्त समाज का मार्गदर्शन आदि के सन्दर्भ में विचार किया गया है।

इसमें डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र खण्ड तीन एवं चार से सामग्री संकलित है। इस पुस्तक का समस्त व्ययभार श्री बजरंगलालजी सारड़ा ने सहर्ष स्वीकार किया है। प्रभु की कृपा सदैव उन पर सपरिवार बरसती रहे। हर बार की तरह सांखला प्रिण्टर्स का प्रिंटिंग कार्य में सौहार्दपूर्ण सहयोग एवं परमपूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

शिवाकांक्षी

—**स्वामी संवित् सुबोधगिरि**
सम्पादक व संकलनकर्ता
मो. 09413769139

अनुक्रम

दर्शनशास्त्र की मूलभूत मान्यतायें

1. Philosophy—पश्चिम का Philosophy शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों से बना है—Philos+sophia जिसका अर्थ है बुद्धिमत्ता का प्रेम। इसकी पहुंच बुद्धि तक ही है, इससे परे नहीं।

2. दर्शन—भारत का दर्शन शब्द पश्चिम के Philosophy शब्द से अधिक गंभीर है। इसका अर्थ है, परम सत्य का दर्शन अर्थात् साक्षात्कार। यह बुद्धि से आगे आत्मा की अनुभूति का क्षेत्र है। उदाहरणार्थ श्री केशवचन्द्र सेन या राममोहन राय Philosopher कहे जा सकते हैं, किन्तु श्री रामकृष्ण परमहंसदेव लौकिक विद्या में अनपढ़ होते हुए भी सच्चे सत्य के द्रष्टा थे।

3. दर्शन और विज्ञान—जहां विज्ञान विश्व के परम सत्य का एकाकी अध्ययन करता है, वहां दर्शन उसी परम सत्य का समग्र एवं सर्वांगीण अध्ययन करता है। उदाहरणार्थ—भौतिकी (Physics) मात्र पदार्थ (Matter) तथा ऊर्जा (Energy) का अध्ययन करता है। रसायनशास्त्र केवल रासायनिक द्रव्यों का ही, वनस्पति शास्त्र केवल वनस्पति का ही, जीव विज्ञान केवल जीव का, अध्ययन करते हैं।

भिन्न-भिन्न विज्ञानों द्वारा विश्व का खंडशःचित्र (Fragmentary View) उपलब्ध होता है। दर्शन हमें समग्र विश्व का अखंड दर्शन कराने का प्रयास करता है। उदाहरणार्थ—धरती के गोलाकार होने पर भी उसके खंडशःचित्रों में वह गोल नहीं दिखायी देती। इसलिए भिन्न-भिन्न विज्ञान एक Jury के सदस्यों के समान हैं, जो तथ्य खोजकर सामने लाते हैं। तथा दर्शन एक Judge के समान है जो उन भिन्न-भिन्न तथ्यों का मिलान कर उन पर अपना निर्णय देता है।

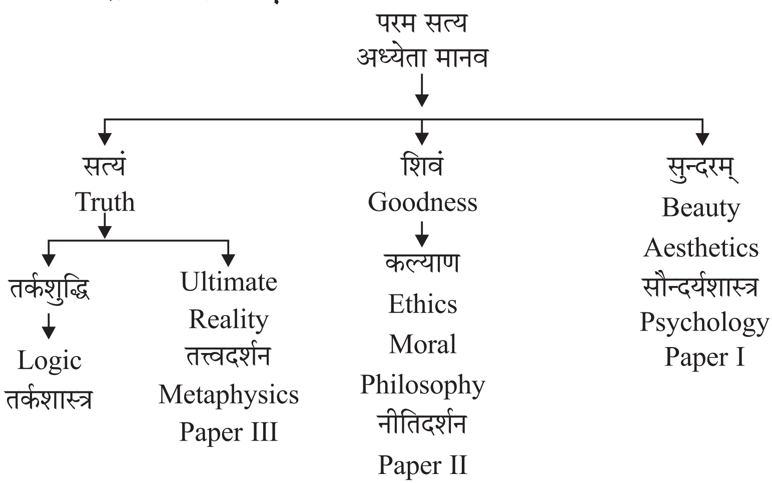
विज्ञानों का अध्ययन क्षेत्र अधिकांश बाहर का ही जगत् रहता है। दर्शन का अध्ययन क्षेत्र बाहर के जगत् की अपेक्षा अन्तर्जगत् अधिक रहता है। विज्ञान वस्तुओं से अधिक संबंध रखता है। दर्शन विचारों और अनुभूतियों से अधिक संबंध रखता है। जिसकी अन्तःस्थिति सुदृढ़ है वह परिस्थिति के विकट मार्ग में भी विजयी होगा, अन्यथा परिस्थिति उसको कुचल डालेगी।

4. दर्शन और धर्म—दर्शन परम सत्य के लिए बौद्धिक एवं विवेकपूर्ण दृष्टिकोण है। जबकि धर्म उसी परम सत्य के लिये भावनात्मक दृष्टिकोण है। धर्म में प्रायः तीन तत्त्व मिले रहते हैं—

(क) दार्शनिक दृष्टिकोण, (ख) कथा पुराण और (ग) कर्मकांड।

धर्म में कुछ अंध-विश्वास भी चलते रहते हैं जिनका दर्शन में स्थान नहीं है। दर्शन प्रत्येक विश्वास को विवेक की कसौटी पर कस कर मानता या त्यागता है।

5. दर्शन की शाखाएं—



तत्त्व ज्ञान की मौलिक समस्याएं—दर्शन विश्व के चरम सत्य का व्यवस्थित एवं तर्कशुद्ध अध्ययन है—

1. विस्मय की गोदी में दर्शन का जन्म—जब मनुष्य अपने इर्द-गिर्द के इस विराट् विश्व को देखता है जिसमें कोटि-कोटि ग्रह, नक्षत्र, तारागण, धरती से अनन्त गुणा बड़े-बड़े पिण्ड, असंख्यकोटि निहारिकाएं—सब किसी अदृश्य शासन के सूत्र में बंधे हुए घूम रहे हैं। तब वह बड़े विस्मय में पड़ जाता है और जीवन की आदि और अन्तिम समस्याओं के विषय में सोचने लग जाता है। इसी विस्मय की गोद में ही दर्शन का जन्म होता है। यूनान के दार्शनिक अरस्तू (Aristotel) ने भी कहा है—'Philosophy is born in the lap of wonder.'

2. अथातो ब्रह्मजिज्ञासा—वेदांत के प्रथम सूत्र में लिखा है, 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' अर्थात् सबसे प्रारम्भ में ब्रह्म की जिज्ञासा है। ब्रह्म क्या है? विश्व का अन्तिम सत्य क्या है? इसी जिज्ञासा से दर्शन प्रारम्भ होता है। अतः जिज्ञासा ही दर्शन की जननी है। जिसकी जिज्ञासा जितनी सहज होती है, उतना ही वह

चिन्तनशील होता है। जिसकी जिज्ञासा जितनी तीव्र होती है वह उतना ही सत्य के ज्ञान के लिए व्याकुल हो उठता है। जैसे नरेन्द्रनाथ दत्त (विवेकानन्द) ईश्वर को जानने के लिए अत्यन्त आतुर हो उठे थे। जो अपने आप नहीं सोचता उसे काल अपनी चपत लगाकर सोचने के लिए मजबूर करता है।

3. सृष्टि रूपी काव्य का आदि कवि कौन है?—वेद में सृष्टि की एक काव्य से उपमा दी गयी है जो चिर-प्राचीन होकर भी नित्य नवीन है। 'पश्य देवस्य काव्यं, न ममार जीर्यति' वेद अर्थात् देवता के इस सृष्टि रूपी काव्य को तो देखो। न यह मरता है और न पुराना होता है।

मन में जिज्ञासा उठती है कि इस सृष्टि के अलौकिक काव्य को रचने वाला अमरकवि कौन है?

इसी सृष्टि को आंग्ल भाषा में Universe कहा जाता है। जिसका अर्थ है एक शक्ति (Uni) का काव्य (Verse) है। Universe के उस अमर UNI (एक परम सत्य) को खोजना ही दर्शन का प्रयोजन है।

4. रूमी का आदि एवं अंत—ईरान के एक दार्शनिक ने सृष्टि की एक ऐसी रोचक पुस्तक से तुलना की है, जिसका पन्ना-पन्ना और पंक्ति-पंक्ति बहुत मनोरंजक है, किन्तु उसका प्रथम एवं अंतिम पन्ना लुप्त है। अतः मानव युगों से इस सृष्टि रूपी पुस्तक के आदि रचयिता और सृष्टि रूपी महागाथा के अन्तिम परिणाम की खोज कर रहा है। यह खोज ही दर्शन को जन्म देती है—

तत्त्व दर्शन के तीन मौलिक प्रश्न है—

कुतः Whence (क) यह सृष्टि कहां से आयी या पैदा हुई?

कीदृशीः How (ख) यह सृष्टि किस नियम से किस प्रकार चल रही है?

कुत्रः Whither (ग) सृष्टि कहां, किस नियति की ओर किस लक्ष्य की ओर बढ़ रही है?

5. है या नहीं—दर्शन का आधारभूत प्रश्न है—विश्व की अन्तिम सचाई कुछ है, या कुछ भी नहीं है? इस प्रश्न के तीन उत्तर हो सकते हैं—

(क) विश्व में कोई अन्तिम सत्य है। (Theism)

(ख) विश्व में अन्तिम सत्ता कोई नहीं है। (Nihilism)

(ग) इस बात में संदेह है कि कोई अंतिम सत्ता है या नहीं। (Scepticism) संशयवाद।

6. क्या उसे जान सकते हैं—इस प्रश्न के निम्नलिखित उत्तर हो सकते हैं—

(क) ज्ञेयवाद (Gunosticism)—इस सिद्धान्त के अनुसार परम सत्य को जाना जा सकता है।

(ख) अज्ञेयवाद (Agnosticism)—इस सिद्धान्त के अनुसार परम सत्य को जाना ही नहीं जा सकता।

7. एक या अनेक—फिर प्रश्न उठता है, विश्व की कोई अन्तिम सत्ता है, तो क्या वह एक है, अथवा अनेक? इसके निम्नलिखित उत्तर हो सकते हैं—

(क) अद्वैतवाद, एकसत्तावाद-एकतत्त्ववाद (Monism)—इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व की अंतिम सत्ता एक और केवल एक ही है। जैसा वेदांत में कहा गया है—'एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति' अर्थात् एक ब्रह्म ही है, उसके सिवा कोई दूसरा नहीं है। वेद में ही कहा है—'एकमेव अद्वितीयम्' अर्थात् वह एक ही है, उसके समान दूसरा नहीं है। कुरान में भी कहा है—'आ अल्लाह इल्लि लहा' अर्थात् अल्लाह एक ही है, उसके सिवा कोई दूसरा नहीं।

(ख) द्वैतवाद (Dualism)—इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व की अन्तिम सचाइयां दो हैं। कोई दार्शनिक आत्मा तथा परमात्मा को दो अंतिम सत्ताएं मानते हैं तथा कई जड़ प्रकृति और चेतन आत्मा को दो सत्ताएं मानते हैं। भारत में मध्वाचार्य द्वैतवादी दार्शनिक हैं। यूरोप में देकार्ते (Descartes) भी द्वैतवादी हैं।

(ग) त्रैतवाद (Trillism)—इस सिद्धान्त के अनुसार अंतिम सत्ताएं तीन हैं—जीव, जगत् और ब्रह्म। इसके समर्थक सांख्य दर्शन, न्याय दर्शन और आर्य समाज है।

(घ) अनेकत्ववाद या अनेकांतवाद (Pluralism)—इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व की अंतिम सत्ताएं अनेक हैं, एक नहीं।

8. अन्तिम या चरम सत्ता का स्वरूप क्या है?—तत्त्व विज्ञान के प्रश्नों में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि विश्व की चरम सत्ता का स्वरूप क्या है—जड़ अथवा चेतन। इसके उत्तर में निम्नलिखित सिद्धान्त प्रस्तुत होते हैं—

(क) अध्यात्मवाद या चैतन्यवाद (Spiritualism or Idealism)—इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व की अंतिम सत्ता का स्वरूप आध्यात्मिक अर्थात् चेतना के गुण वाला है। भारत की अधिकांश दर्शनधाराएं आध्यात्मिक हैं।

(ख) जड़वाद, पदार्थवाद (Materialism)—इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व की अंतिम सत्ता जड़ पदार्थ है, कोई चेतन, आत्मा, परमात्मा इत्यादि नहीं। भारत के चार्वाक तथा पश्चिम के अधिकांश विचारक जड़वादी या पदार्थवादी ही हैं।

(ग) उभयवाह्यवाद (Neutralism)—इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व की अंतिम सत्ता न जड़ है न चेतन। वह दोनों से परे ही है। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध दार्शनिक Bertrand Russell इस मत के हैं।

9. चरम सत्ता को जानने की विधि क्या है—इस प्रश्न के उत्तर में निम्नलिखित सिद्धान्त सामने आते हैं—

(क) इन्द्रिय अनुभववाद (Empiricism)—इस वाद के अनुसार परम सत्य को इन्द्रिय अनुभव के द्वारा ही जाना जा सकता है। इसको मानने वाले इंग्लैण्ड के Locke, Barkley, Hume, Sidgwick, Benthem इत्यादि विचारक हैं।

(ख) बुद्धिवाद (Rationalism)—इसके अनुसार परम सत्य को इन्द्रियों के द्वारा नहीं, वरन् बुद्धि के द्वारा जाना जा सकता है। इसके समर्थक Descartes, Spinoza, Liebniz, Wolf, Hegel है।

(ग) शास्त्रवाद (Dogmatism)—इसके अनुसार परम तत्त्व को धर्म पुस्तकों या शास्त्रों के माध्यम से ही जाना जा सकता है। इसे मताग्रहवाद या अंध-श्रद्धावाद भी कहते हैं। ईसाई पादरी तथा मुसलमान मौलवी अपनी बाइबिल या कुरान को ही अन्तिम प्रमाण मानते हैं।

(घ) Critical Rationalism or Criticism—इसके अनुसार परम सत्य को न अंधविश्वास से, न इन्द्रिय ज्ञान से और न केवल बाहर के शास्त्रों से, न मात्र सामान्य बुद्धि से ही जाना जा सकता है। उसे प्रखर तर्कयुक्त बुद्धि से जान सकते हैं।

10. Intuitionism अन्तरानुभूतिवाद या अन्तःप्रज्ञावाद—इसके अनुसार परम सत्य का ज्ञान इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सबसे परे शुद्ध आत्मानुभूति के प्रकाश द्वारा ही हो सकता है। प्राचीन भारतीय ऋषियों ने इसी अन्तरानुभूति के माध्यम से परम सत्य को जाना था।

11. भारतीय दर्शन की प्रसिद्ध विचारधाराएं—वेद विश्व के पुस्तकालयों का प्राचीनतम ग्रंथ है। भारतीय आस्तिक उसे प्राचीनतम ईश्वरीय विधान मानते हैं। इसी मान्यता के आधार पर भारतीय दर्शन दो विभागों में विभक्त हो जाता है।

आस्तिक दर्शन		**नास्तिक दर्शन**	
Orthodox Schools of Philosophy (जो वेद को ईश्वरीय प्रमाण मानते हैं।)		Unorthodox Hetrodox Schools of Philosophy (जो वेद को अंतिम प्रमाण नहीं मानते)	
1. सांख्य	— कपिल	1. चार्वाक दर्शन (लोकायत दर्शन)	— चार्वाक
2. योग	— पतंजलि		
3. वेशैषिक	— कणाद	2. जैन दर्शन	— महावीर
4. न्याय	— गौतम		
5. पूर्वमीमांसा	— जैमिनी	3. बौद्ध दर्शन	— भगवान् बुद्ध
6. उत्तरमीमांसा	— बादरायणव्यास		

भारतीय दर्शन की पूर्णता

दर्शन का इतिहास भारत से है न कि यूनान से—दर्शन के क्षेत्र में भारत विश्व का शिरोमणि देश है। वास्तव में भारत ने अन्तर्जगत् में डुबकी लगा कर जिन अमूल्य विचार-रत्नों की उपलब्धि प्राप्त की है उसके सम्मुख शेष विश्व की समस्त सम्पदा फीकी पड़ जाती है। यह दुर्भाग्य की बात है कि पश्चिम में लिखित अधिकांश दर्शन के इतिहास अपनी कथा यूनान से प्रारम्भ करते हैं। यूनान में छठी शताब्दी ई.पू. से दार्शनिक चिन्तन प्रारम्भ होता है, जबकि भारत में यह काल प्रखर दार्शनिक वाद-विवाद का भास्वर, मध्याह्न काल है। पश्चिम में जब प्रथम दार्शनिक थेल्स अनुमान लगा रहा था कि सम्भवतः जल ही सृष्टि का परम सत्य है। उस समय तक भारत में वैदिक दर्शन, उपनिषदों का महानतम वेदांत दर्शन, कल्पसूत्र, जैन एवं बौद्ध आचार्य दर्शन—सभी पूर्णतः विकसित एवं प्रतिष्ठित हो चुके थे। अतः संसार में दर्शनशास्त्र का इतिहास भारत से प्रारम्भ होना चाहिए न कि यूनान से।

संसार में श्रेष्ठतम आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि एवं बौद्धिक दर्शन—डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में—'संसारभर में सम्भवतः आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि अथवा बौद्धिक दर्शन की ऐसी कोई भी ऊँचाई नहीं है कि जिसका सममूल्य वैदिक ऋषियों और अर्वाचीन नैयायिकों के मध्यवर्ती विस्तृत ऐतिहासिक काल में न पाया जाता हो।'

भारतीय दर्शन की पाश्चात्य दर्शन की तुलना में श्रेष्ठता—सर डब्ल्यू हंटर के शब्दों में—'भारतीय दर्शन ने उन समस्त दार्शनिक गुत्थियों के सम्भावित समाधान खोज लिए थे, जो गुत्थियां प्रारम्भ से यूनानियों, रोमनों और मध्यकालीन यूरोपीय चिन्तकों को परेशान करती रहीं और आज तक वैज्ञानिकों को भी उलझन में डाले हुए हैं।'

मिसेज मैनिंग के शब्दों में—'हिन्दुओं के मन एवं चिन्तन का उतना अधिकतम विस्तार हो चुका था जितना मानव के लिए कभी भी सम्भव हो सकता है।'

प्रो. श्लेगल (जर्मन) कहते हैं—'यूरोप का सर्वोच्च दर्शन, बौद्धिक अध्यात्मवाद जो यूनानी दार्शनिकों से प्रारम्भ हुआ, प्राच्य अध्यात्मवाद के अनन्त प्रकाश एवं प्रखर तेज के सम्मुख ऐसा प्रतीत होता है जैसे मध्याह्न के प्रखर सूर्य के दिव्य प्रकाश के भरपूर वेग के सम्मुख एक मन्द-सी चिनगारी हो जो धीरे-धीरे टिमटिमा रही हो और किसी भी समय बुझ सकती है।'

काउंट जॉर्न्स जेर्ना का कथन है—'यूनान और रोम के दार्शनिकों की तुलना में हिन्दू दार्शनिक बहुत-बहुत आगे थे।'

प्रो. वेबर का मूल्यांकन है—'दर्शन के ही क्षेत्र में भारतीय मनीषा ने चमत्कारी प्रतिभा के सर्वोच्च शिखर को प्राप्त किया था।'

दर्शन मात्र बौद्धिक वाग्विलास नहीं वरन् जीवन की सर्वोच्च साधना—भारत में पश्चिम की तरह दर्शन केवल बुद्धि व्यायाम अथवा वाणी का विलास मात्र नहीं था वरन् वह तो जीवन की सर्वोच्च साधना ही थी। जीवन का परम लक्ष्य है पूर्णत्व, अमरत्व अथवा मोक्ष को प्राप्त करना। तदर्थ सत्य का साक्षात्कार अनिवार्य है। सत्य की उपेक्षा करके केवल दिमागी उछल-कूद या बुद्धि के बन्दर-नाच से कोई पूर्ण पुरुष या मुक्त पुरुष नहीं बन सकता। गुरुग्रंथ साहिब में लिखा है—

चतुराई न चतुर्मुख पाया।
भोले भाव मिले रघुराया।। (रविदास)

पश्चिम ने आर्मचेयर फ़िलॉसफ़र (आरामकुर्सी दार्शनिक) अधिक पैदा किए हैं। उदाहरण के रूप में इंग्लैण्ड के बर्ट्रेण्ड रसेल पश्चिम के महानतम विचारक माने जाते थे, किन्तु 80 वर्ष की अवस्था में 16 वर्ष की सुन्दरी से जीवन का 16वां विवाह रचाते हैं, आराम से कुर्सी में पड़े हुए, मुख में सिगार लिए, एक ओर सुरा दूसरी ओर सुन्दरी को थामे हुए दार्शनिक समस्याओं पर लिखने या बोलने वाले विलासी व्यक्ति के दर्शन को खोपड़ी के खेल से अधिक और क्या कहा जा सकता है?

भारत में दर्शन को जीवन की परम साधना एवं सर्वोच्च सिद्धि माना गया है।

गीता के दार्शनिक भगवान् कृष्ण, भगवान् बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य आदि क्रियात्मक दार्शनिक थे। जिनकी कथनी-करनी में अन्तर नहीं था। इसलिए भारत में दर्शन केवल मनोरंजन या बुद्धिरंजन का विषय न होकर जीवन की जीवन्त साधना का अंग रहा है।

वेद

भगवान् मनु ने कहा—**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।**

अर्थात् वेद समस्त धर्मों का मूल है। वेद की सर्वोच्च महत्ता इसी बात में है कि वह विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ है। वेद का काल निर्णय करना विद्वानों के लिये अभी तक चुनौती बना हुआ है।

(क) प्राचीन भारतीय आस्तिक विद्वानों का मत है कि वेद अनादि हैं। अर्थात् किसी काल विशेष में इनका आरम्भ या प्रणयन नहीं हुआ।

(ख) यूरोप के विद्वानों को जब वैदिक साहित्य का परिचय हुआ तो वे इस प्राचीनतम साहित्य की ओर कहीं श्रद्धा से कहीं जिज्ञासा से आकर्षित होने लगे। मैक्समूलर ने कहा, ऋग्वेद Rgveda is the oldest book in the human library of man. प्रारम्भ में उन्होंने वेद के प्रति ध्यान देने का अनुमोदन इसी आधार पर किया कि यह मानव जाति की शैशवावस्था का परिचय है। अर्थात् जैसे बच्चे की तोतली बोली में न ऊँचा ज्ञान होता है और न मधुर संगीत फिर भी उसमें शिशु की निर्दोष वाणी का कुतूहल प्राप्त होता है। इनके अनुसार वेद मानवता के बचपन की कहानी है। मानवता या मनुष्य अपने शैशवकाल में क्या सोचती थी? उसकी जिज्ञासा या बौद्धिक विकास कहाँ से प्रारम्भ हुआ है? Vedas are the story of childhood of humanity इसलिए मानव के शैशवकाल को जानने के लिये वेद का अध्ययन किया जाना चाहिये।

(ग) मैक्समूलर के इस मत का भारतीय विद्वानों ने विरोध किया। क्योंकि वेद का अर्थ ही ज्ञान है और स्वामी दयानन्द के मत में वेद सब सत् विद्याओं का मूल है और पूर्णज्ञान का परिपूर्ण भण्डार है। बाद में मैक्समूलर ने जीवन के 20-25 वर्ष लगाकर ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया तथा अन्त में श्रद्धापूर्वक यह श्लोक लिखा—

श्रमण्य देश जातेन श्री गौ तीर्थ वासिना
मोक्षमूलर भट्टेन वेदोऽयं सम्पादितः।

अर्थात् जो श्रमण्य देश में पैदा हुआ और आजकल गो तीर्थ में रहता है, उस मोक्षमूलर भट्ट के द्वारा यह वेद सम्पादित किया गया है।

इससे मोक्षमूलर की भारत भक्ति झलकती है। वे जिज्ञासुओं के पूछने पर बताते थे—श्रमण्य देश का अर्थ जर्मन देश है और गो तीर्थ का अर्थ आक्सफोर्ड है। अंग्रेजी का cow और oxe दोनों के लिये गो शब्द का प्रयोग होता है। फोर्ड का अर्थ होता है नदी को पार करना (This river is fordable), Ford का दूसरा अर्थ होता है पार जाना, पार पाना, तर जाना aford का अर्थ है पार पाना, वहन करना, सहन करना। अतः इंग्लैण्ड और यूरोप के नदी तीरों पर बसे हुए अनेक नगरों के नाम में Ford शब्द का प्रयोग होता है जैसे Oxford, Badford, State Ford आदि। क्योंकि Ford का अर्थ भीतर जाना है और तीर्थ का अर्थ भी तरने वाला और तारनेवाला होता है तथा भारत में नदी तीर पर बसे हुए नगरों को तीर्थ कहा जाता है। अतः मैक्समूलर ने जो (ऑक्सफोर्ड University के प्रोफेसर थे) श्रद्धापूर्वक ऑक्सफोर्ड को गोतीर्थ लिखकर अपनी भारत भक्ति का परिचय दिया। इसी प्रकार उन्होंने अपने नाम को मैक्समूलर के स्थान पर मोक्षमूलर (अर्थात् मोक्ष के मूल वाला तथा अपनी उपाधि वेदोद्धारक कुमारिल भट्ट के समान भट्ट लिखा।

(घ) जर्मनी में वेद की सब शाखाओं को संग्रह करने का इतना चाव बढ़ गया कि हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथों का सम्भवतः भारत से भी अधिक बड़ा भण्डार जर्मनी ने संग्रह कर लिया। आज तक जर्मनी अपने को वेदों का दूसरा धाम—Second home of Vedas कहकर प्रचारित करता है।

(ङ) भारत में ब्रिटिश साम्राज्य आने के उपरान्त अंग्रेजों ने कूटनीतिक विचार किया कि यदि वेद संसार का प्रथम ग्रंथ माना जाता रहा तो भारत संसार का प्राचीनतम राष्ट्र सिद्ध हो जायेगा। जिससे भारत की राष्ट्र भावना एवं स्वतंत्रता की तड़प को बल मिलेगा। सेमेटिक धर्म (यहूदी, ईसाई, मुसलमान) यह परम्परागत विश्वास रखते आये हैं कि यहूदियों की पुस्तक old testament पुरानी बाइबिल जो ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व की मानी जाती है, संसार की प्राचीनतम पुस्तक है। यदि वेद उससे अधिक प्राचीन सिद्ध हो जावे तो उनकी धार्मिक श्रद्धा को ठेस पहुँचती थी और भारतीयों का आत्मगौरव जागृत हो जाने पर उन्हें गुलाम बनाये रखना असम्भव था। अतः सन् 1857 की क्रांति के बाद जब मैकाले की अंग्रेजी शिक्षा लागू की गई तो शिक्षा को अंग्रेजी बना दिया गया और विदेशी इतिहासकारों ने भारतीयों का मनोबल तोड़ने तथा आत्मगौरव को चोट पहुँचाने के लिए इतिहास के ग्रंथों में ऐसी अनर्गल एवं निन्दापूर्ण बातें लिखनी प्रारम्भ की जिससे वेद की प्राचीनता एवं महत्ता, दोनों कम हो जाय। उन्होंने लिखा, आर्यलोग भारत के मूल निवासी न होकर मध्य एशिया के मैदानों

से भारत में आक्रान्ता के रूप में आये। वैदिक ऋषि गडेरिये थे और वेद मंत्र गडेरियों के गीत हैं।

वेद के काल का समय भी ईसा से 1200 वर्षों से पूर्व से लेकर 2000 वर्ष के पूर्व के बीच का बताया। इतिहास की धोखाधड़ी में अंग्रेजों का कूटनीतिक उद्देश्य था old testament को संसार का प्राचीनतम ग्रंथ सिद्ध करना।

पश्चिमी देशों में गीता के बढ़ते हुए महत्त्व को देखकर पादरी लोरंसर जैसे धर्मोन्मादी लेखकों ने गीता के काल को भी ईसाइयों की बाइबिल के बाद का बताया और कहा कि गीता बाइबिल के sermon on the mount से प्रभावित है।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने जहाँ एक ओर राजनीतिक स्वाधीनता के लिये 'स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है' का मंत्र दिया वहाँ भारत की सांस्कृतिक श्रेष्ठता के प्रतिपादन के लिए विदेशियों के सभी मिथ्या कुप्रचारों का प्रबल तर्कयुक्त उत्तर दिया। उन्होंने 'ओरायन' नामक ग्रंथ में सिद्ध किया कि वेद अन्तर्साक्ष्य के आधार पर वेद में वर्णित अग्राहयण नक्षत्र का काल ज्योतिष गणना के आधार पर ही ईसा से कम से कम सात हजार वर्ष पूर्व सिद्ध होता है और प्रति दस हजार वर्ष के चक्र के पश्चात् पुनः वही स्थिति आ जाती है। अतः वेद के उन मंत्रों का काल आज से कम से कम 9 हजार वर्ष पूर्व तो सिद्ध हो ही जाता है। उससे पहले कितने 10-10 हजार वर्ष के कालचक्र बीते होंगे, इस पर और शोध की आवश्यकता है। लोकमान्य की ओरायन नामक पुस्तक से मैक्समूलर तथा यूरोप के बड़े-बड़े प्राच्य विद्या विशारद अत्यन्त प्रभावित हुए। लोकमान्य ने सिद्ध किया कि आर्यलोग मध्य एशिया से नहीं आये थे। क्योंकि उनके साहित्य में (वेद में) जहाँ सप्त सिंधव का वर्णन है, जिन-जिन नदी तीरों पर ऋषियों को मंत्रों का दर्शन हुआ, उनका वर्णन है। वहाँ मध्य एशिया की किसी नदी, पर्वत अथवा प्राकृतिक वातावरण का कहीं उल्लेख तक नहीं है। उधर मध्य एशिया में भी आर्य जाति के मूल निवास का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

लोकमान्य तिलक ने गीता रहस्य में लोरंसर जैसे धर्मान्ध पादरियों को करारा उत्तर देते हुए सिद्ध किया कि गीता के बाइबिल से प्रभावित होने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि गीता का काल ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। उलटे गीता से ही बाइबिल में अनेक विचार एवं सिद्धांत चुराये गये हैं।

(छ) डा. ज्वालाप्रसाद सिंहल ने अपने ग्रंथ The Sphink speaks में यह स्थापित किया कि वेद का काल कम से कम 25 लाख वर्ष पूर्व का है। उन्होंने महाप्रलय की पौराणिक तिथि को अपनी गणना का आधार माना है।

(ज) भारत की प्राचीन परम्परा एवं आधुनिक आर्य समाज की मान्यता यह है कि वेद अनादि एवं अपौरुषेय हैं। इसके प्रारम्भिक लेखन की कोई तिथि है ही

नहीं। तिथि के ज्ञात या अज्ञात होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। ये किसी पुरुष की रचना हैं ही नहीं अतः अपौरुषेय हैं। ये साक्षात् परमेश्वर की वाणी अथवा ईश्वर का निःश्वास है। अतः वेद भगवान् उतना ही प्राचीन है जितना परब्रह्म परमेश्वर। हर बार महाप्रलय के पश्चात् जब नयी सृष्टि होती है तब भगवान् कुछ ऋषियों के अन्तर में वेद ज्ञान का प्रकाश करते हैं। आर्य समाज की मान्यता है कि यही वेद अक्षरशः यही संहितायें हर बार महाप्रलय के पश्चात् मानवता के मार्गदर्शन के लिए ईश्वर की कृपा से प्रकट होती हैं।

पाणिनि एवं महामुनि यास्क का मत—ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः। अर्थात् ऋषि मंत्र द्रष्टा हैं सृष्टा नहीं। इस प्रकार ऋषि मंत्रों के रचयिता नहीं वरन् संवाददाता या सम्पादक के समान हैं।

इसके विपरीत पश्चिमी विद्वान ऋषियों को ही मंत्रों के कवि और रचयिता मानते हैं। इससे वेद अपौरुषेय न होकर पौरुषेय बन जाते हैं। यही पूर्व और पश्चिम के दृष्टिकोण में भेद है।

क्या वेद में इतिहास है?

इस विषय में विद्वानों में तीव्र मतभेद हैं। कट्टर आर्य समाजी विद्वानों का मत है कि वेद में इतिहास नहीं है। इतिहास पहले घटी हुई मानवीय घटनाओं का वृत्तांत है। यदि वेद से पहले मानव का जन्म एवं क्रिया-कलाप घट चुका है, तभी वेद में इतिहास का विवरण आ सकता है अन्यथा नहीं। यदि वेद ही सृष्टि का ज्ञान प्रकाश है और वह ईश्वरीय ज्ञान है तो उसमें मानवीय इतिहास का कोई स्थान अथवा सम्भावना नहीं। वेद में इतिहास मान लेने से वेद का अपौरुषेय रूप नष्ट हो जाता है। इसलिए आर्यसमाजी विचारकों की खुली घोषणा है कि वेद में इतिहास नहीं है। समझने के लिए—इतिहास का अर्थ है पहले घटनाएं घटती हैं, उसके बाद उसका इतिहास लिखा जाता है। जैसे शिवाजी के होने के पश्चात् शिवाजी का इतिहास लिखा गया। अगर वेद में इतिहास माना जाय तो वेद बाद का ज्ञान सिद्ध होता है। यानी वेद में जिनका-जिनका इतिहास है उनके पश्चात् वेद प्रकाशित हुआ है, ऐसा मानना पड़ेगा।

दूसरी ओर देशी और विदेशी अनेक विद्वान हैं जो वेद में इतिहास मानते हैं और वेद में वर्णित सुपरिचित मानवीय नामों को ऐतिहासिक पात्र बताकर उनकी बोध कथाओं की विवेचना करते हैं।

आर्यसमाजी विचारक वेद में आये हुए मानवीय नामों की अध्यात्मिक व्याख्या करके काम निकाल लेते हैं। कई प्रसंगों की प्रतीकात्मक व्याख्या बड़ी सुन्दर बन पड़ी है।

तो आर्य समाजियों का मत है वेद में इतिहास नहीं है। और जहाँ-जहाँ इतिहास है वहाँ-वहाँ वे उसका नक्षत्र वैज्ञानिक अर्थ और अध्यात्मिक अर्थ निकालते हैं। जैसे वेद में अहल्या का वर्णन है। इसका अध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार लगाते हैं—अहल्या का अर्थ है जिस भूमि पर हल नहीं चलाया गया है। हल नहीं चलाने से भूमि कठोर हो जाती है यानी पत्थर के समान हो जाती है। सीतापति का अर्थ होता है हल या हल में जो फल लगा होता है जिससे धरती चीरी जाती है उसको सीता कहते हैं और हल चलने पर भूमि नरम मुलायम हो जाती है।

(अपूर्ण)

हम वेदों तक पहुँचे वह सभी पूर्व शताब्दियों की तुलना में इस शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ सद्भाग्य कहा जा सकता है।

उपनिषदों में पाये जाने वाले अद्भुत सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए शोपेनहावर ने फिर कहा है—ये सिद्धान्त ऐसा ही है जो एक प्रकार से अपौरुषेय ही है। ये जिनके मस्तिक की उपज है, उन्हें निरे मनुष्य कहना कठिन है।

अमरीकन महिला ह्वीलर विल्लाक्स कहती है—भारत वेदों की भूमि है, जिसके अन्दर न केवल पूर्ण जीवन के पूर्णत्व के लिए धार्मिक तत्त्वों का निरूपण है, वरन् उन तथ्यों का भी निर्देश है जिनको आज विज्ञान शास्त्र ने सत्य प्रमाणित किया है। वैदिक ऋषियों को विद्युत शक्ति, रेडियम, इलेक्ट्रोन तथा वायुयान आदि सब बातों का ज्ञान था, ऐसा प्रतीत होता है।

× × ×

यह एक बड़ी आश्चर्यजनक बात है। ईश्वरीय धर्मग्रंथों में एकमात्र वेद ही ऐसा है जिसके विचार वर्तमान विज्ञान के साथ पूर्ण साम्य रखते हैं क्योंकि वेद में भी विज्ञान के अनुसार विश्व की क्रमिक रचना का प्रतिपादन है।

—श्री जकोलियट

भारतीय संस्कृति और वेद

1. विश्व का प्राचीनतम साहित्य।

2. सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा—संस्कृति का सर्वप्रथम प्रकाश जो सर्वश्रेष्ठ प्रकाश सिद्ध हुआ।

3. मानवता के लिए जीवन का सर्वप्रथम दिव्य विधान। किसी भी राज्य का प्रशासन समुचित रीति से चलाने के लिए प्रशासन से पूर्व ही संविधान का होना अनिवार्य है। संविधान विधि (नियम) का सम्यक् एवं सुस्पष्ट घोषणापत्र है। यदि किसी नागरिक को जीवन के उद्देश्य तथा नियम स्पष्ट शब्दों में नहीं बताये जाएंगे, तो उन नियमों के अनुसार न्यायपालिका चलाना तथा उन अज्ञात नियमों का उल्लंघन करने वाले को दण्ड देना स्वयं में अन्याय एवं अवैध कार्य होगा। यदि सृष्टि की रचना किसी सृष्टिकर्ता ईश्वर ने की है, तब सृष्टि के सम्यक् प्रशासन के लिए उसे अपना दिव्य संविधान सृष्टिरचना के साथ ही घोषित कर देना चाहिए ताकि सभी मानवों को जीवन के उद्देश्य एवं नियम स्पष्ट हो जावें तथा यह भी प्रकट हो जावे कि सृष्टि का महानतम सम्राट् हमसे किस मर्यादापालन की आशा रखता है? वेद का वचन है—**'एको हि विश्वस्य भुवनस्य राजा'** अर्थात् इस सारे विश्व भुवन का एक ही सम्राट् है। इस दृष्टि से संसार की सभी धर्म पुस्तकों में वेद का स्थान ही सर्वप्रथम, सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हो जाता है। क्योंकि यह विधान तभी से प्रकट है जब से सृष्टि ने नेत्र खोले हैं। इसकी तुलना में किसी धर्म का विधान 1973 वर्ष पहले प्रकट हुआ। किसी का 14 शती पूर्व, किसी का केवल पांच शती पूर्व तथा आनन्द मार्ग जैसे सम्प्रदाय का नया विधान आज प्रकट हो रहा है। प्रश्न उठता है कि जब सृष्टि को बने लगभग ढाई अरब वर्ष बीत चुके हैं तथा धरती पर मानव का अस्तित्व भी करोड़ों वर्षों से माना जाता है। तब करोड़ों-करोड़ों वर्षों तक विधान प्रकट न करने वाले गॉड या खुदा को क्या न्यायकारी माना जा सकता है? इसलिए वेद ही सर्वप्रथम ईश्वरीय विधान है।

उपनिषद् की शिक्षा प्रणाली

भारत विश्व-दर्शन का आदिस्रोत है। पश्चिम में दर्शन का प्रथम उन्मेष सुकरात, अफलातून तथा अरस्तू के काल में माना जाता है, जो यूनानी दर्शन के जनक कहे जा सकते हैं। उनसे पहले के यूनानी दार्शनिक थेलीज़ एवं अनेक्ज़ीमीनर आदि में से कोई तो जल, कोई अग्नि को ही परम सत्य मान कर सन्तोष करने वाले विचारक थे, जिनका विचारों के संसार में कोई विशेष महत्त्व नहीं है। फिर भी जिस समय यूनानी दर्शन अपना प्रथम नेत्र खोल रहा था उस समय भारतीय दर्शन अपनी पूर्ण परिपक्वता की पराकाष्ठा पर था। उस समय भारत में न्याय, वैशेषिक, सांख्य-योग, वेदान्त, जैन, बौद्ध आदि दर्शनों पर गंभीर शास्त्रार्थ, भाष्य एवं शोध चल रहे थे। अतः विश्व में दर्शन का इतिहास यूनान से प्रारम्भ न होकर भारत से ही प्रारम्भ माना जाना चाहिए। विश्व में दर्शन की आदि-जननी भारतभूमि ही है तथा विश्व में धर्म एवं दर्शन के आदिस्रोत वेद ही हैं।

वेद में मानव के मौलिक, दार्शनिक प्रश्न मुखरित हुए हैं तथा उनके गहनतम उत्तर भी दिये गए हैं। वेद में ज्ञान-भक्ति-कर्म तीनों की त्रिपथगा गंगा प्रवाहित हो रही है। वैदिक वाङ्मय के ज्ञान खण्ड का नाम ही उपनिषद् है। उपनिषद् शब्द संस्कृत के दो शब्दों के संयोग से बना है। उप + निषद्, उप का अर्थ है निकट और निषद् का अर्थ है बैठना। अतः शिष्य द्वारा गुरु के निकट बैठकर आध्यात्मिक जिज्ञासा की पूर्ति हेतु किये गए पारस्परिक वार्तालाप को उपनिषद् कहा जाता है।

उपनिषद् शैली—सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली

विश्व में आज तक जितनी प्रकार की शिक्षा प्रणालियाँ विकसित हुई हैं उनमें सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली उपनिषद् की प्रणाली ही है। इसमें गुरु तथा शिष्य आमने-सामने बैठकर सत्य के प्रति अनन्य निष्ठा का व्रत ले कर विश्व के महानतम ज्ञान का आदान-प्रदान करते हैं। शिष्य के मन में जब-जब जो-जो शंकायें प्रकट होती हैं वह तुरंत उन्हें गुरु के सम्मुख प्रस्तुत कर उनका समाधान पाता जाता है। आजकल की कक्षा-शिक्षण प्रणाली की शिक्षा में यह सम्भव नहीं। कक्षा में शिक्षक एक लेक्चरर के रूप में होता है जो चालीस-पचास छात्रों की कक्षा में

एक कृत्रिम एवं अवांछनीय दूरी से अपना भाषण झाड़ कर चला जाता है, उसे छात्रों के वास्तविक ज्ञानवर्धन, उनकी आन्तरिक जिज्ञासाओं की परितृप्ति की कोई चिन्ता नहीं होती। यदि किसी छात्र के मन में कोई बहुत ही गम्भीर एवं जीवन का निर्णायक प्रश्न चुभन दे रहा हो तब भी वह सामाजिक संकोच, अध्यापक की दूरी तथा कक्षा के कृत्रिम अनुशासन के भय से अपनी जिज्ञासा का गला घोंट कर ही रह जाता है। इस प्रकार ज्ञान की जननी जिज्ञासा की हत्या हो जाती है। इससे ज्ञान की क्या दुर्दशा होगी इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का मूल मंत्र है—

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यम् करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

इसमें गुरु एवं शिष्य आमने-सामने बैठकर प्रतिज्ञा करते हैं—'ईश्वर हम गुरु-शिष्य, दोनों की साथ-साथ रक्षा करें, हम ज्ञान के फलों को साथ-साथ भोगें, हम दोनों की शक्ति सांझी हो, हमारा पढ़ा और पढ़ाया हुआ तेजस्वी हो। हम परस्पर द्वेष कभी न करें। ईश्वर हमें त्रिविध शान्ति प्रदान करें।'

उपनिषदों की इस वार्तालाप शैली की शिक्षा से जो गुरु-शिष्य सम्बन्ध निर्माण होता था वह पूरे जीवन में एक नैतिक तथा आध्यात्मिक क्रान्ति ला देता था। आजकल की शिक्षा प्रणाली में गुरु-शिष्य का सजीव सम्पर्क लुप्त हो चुका है, इसी कारण शिक्षा क्षेत्र में भयंकर अशान्ति व्याप्त है जिसकी चोट गुरु एवं शिष्य, दोनों भुगत रहे हैं। उपनिषद् का शिष्य अपने प्रश्नों में बड़ा निर्भीक है तथा उपनिषद् का गुरु अपने ज्ञान में उदार होते हुए भी पात्रता का विचार करके ही ज्ञान का अमूल्य रत्न बांटता है। कठोपनिषद् में भारत का एक छोटा सा बालक 'नचिकेता' सत्य की प्राप्ति के लिए साक्षात यमराज से वार्तालाप करता है तथा हजारों प्रलोभन मिलने पर भी सत्य-ज्ञान प्राप्ति के पथ से विचलित नहीं होता। इसी प्रकार ब्रह्माजी ब्रह्म-ज्ञान उपदेश से पूर्व इन्द्र एवं विरोचन, दोनों की पात्रता का परीक्षण करते हैं। याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी संवाद तथा याज्ञवल्क्य-गार्गी संवाद विश्व के अमूल्य दार्शनिक वार्तालाप हैं।

मानव जीवन का सबसे प्रथम एवं आधारभूत प्रश्न है—कोऽहम? अर्थात् 'मैं कौन हूँ?' उपनिषद् के ऋषि इसी आत्मतत्त्व की विस्तृत एवं पूरी व्याख्या करके उत्तर देते हैं—

'सोऽहम' मैं वही हूँ जो परब्रह्म परमेश्वर है। आत्मा तथा परमात्मा की इस अन्तर्भूत एकता का दर्शन ही उपनिषद् विद्या है। इसे ही अध्यात्म विद्या, आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या कहते हैं। यही सच्ची विद्या या पराविद्या है। इसके अतिरिक्त शेष सब विद्याओं को अपराविद्या ही माना गया है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में देवर्षि नारदजी बाल ब्रह्मज्ञानी सनतकुमारजी से कहते हैं कि 'मैं धरती से आकाश तक की समस्त विद्याएं जानता हूँ। किन्तु फिर भी मुझे शान्ति नहीं मिली, इस पर सनतकुमारजी पूछते हैं, 'हे नारदजी, क्या आपने जानने वाले को भी जान लिया है? क्या आपने द्रष्टा को भी देख लिया है?' इस पर नारदजी के मौन हो जाने पर सनतकुमारजी कहते हैं कि बिना ज्ञाता को जाने सब ज्ञान अज्ञान बन जाता है। वही बात आज तक आधुनिक मानव की अशान्ति का कारण बनी हुई है। मानव बहिर्मुखी दृष्टि से विश्व की हर वस्तु को जानने के लिए व्याकुल है। किन्तु स्वयं अपने आप के प्रति अन्धा बना हुआ है। उपनिषद् मानव की इसी आधारभूत भूल का सुधार करता है तथा उसे विश्व के महानतम रहस्यों के रहस्य का बोध स्वयं अपने भीतर करा देता है। यह महान् आश्चर्य है कि मानव का ही समस्त जीवन नहीं, वरन् सृष्टि के आदि से अन्त तक सभी जीवों की जीवन साधना स्वयं आत्मा द्वारा अपने भीतर ही अपने आत्म तत्त्व को ही खोजने की सतत साधना है। कवि इकबाल के शब्दों में—

ढूँढ़ता फिरता हूँ मैं, इकबाल अपने आपको।
आप ही गोया मुसाफिर, आप ही मंजिल हूँ मैं।।

'उप' और 'नि', ये दो उपसर्ग और 'सद्' धातु से यह शब्द बना है। उपनिषदों ने ही स्वयं इस शब्द की व्याख्या इस तरह सूचित की है—'यदा वै बली भवति, अथा उत्थाता भवति, उपसीदन द्रष्टा भवति, श्रोता भवति, मन्ता भवति, बौद्धा भवति, कर्ता भवति, विज्ञाता भवति।' (छां. 7/8/1) जब मनुष्य बलवान होता है तब वह उठकर खड़ा होता है और उठकर खड़ा होने पर गुरु की सेवा करता है। फिर वह गुरु के पास (उप) जाकर बैठता है (सद्), पास में जाकर बैठने पर वह गुरु का जीवन ध्यान से देखता है, उनका व्याख्यान सुनता है, उसे मनन करता है, समझ लेता है, और उसके अनुसार आचरण करता है। उसमें से अन्त में उसे विज्ञान यानी अपरोक्षानुभूति का लाभ होता है। वही उपनिषद् है। 'नि' अर्थात् 'नितराम्' निष्ठा से—यह उपसर्ग इस व्याख्या में छूट गया सा दीखता है। परन्तु सेवा में निष्ठा आ ही जाती है।

किन्तु 'नि' उपसर्ग का यह सूचित अर्थ स्पष्ट करने वाली और 'सद्' धातु का दूसरा अर्थ लेकर मानों और एक व्याख्या उपनिषद् में एक दूसरी जगह सुझाई गई है—'ब्रह्मचारी आचार्यकुलवासी, अत्यन्तम् आत्मानम् आचार्य कुले अवसादयन्' (छां. 2/23/1)। ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरु के पास रहकर (उप.), गुरु-सेवा में अपने-आपको अत्यन्त यानी विशेष रूप से (नि.) खपाने वाला (सद्) जो रहस्यभूत विद्या प्राप्त करता है, वह है उपनिषद्।

दोनों पर्यायों को एकत्र करके अर्थ इस प्रकार निष्पन्न होगा—1. आत्मबल 2. उत्थान 3. ब्रह्मचर्य, 4. गुरु सेवा में शरीर को निःशेष खपा देना, 5. गुरु (हृदय) सान्निध्य, 6. जीवन-निरीक्षण 7. श्रवण, 8. मनन, 9. अवबोधन, 10. आचरण और 11. अनुभूति—इतना सारा भाव इस छोटे-से शब्द में अंतर्निहित है। इस तरह 'उपनिषद्' शब्द से समग्र ज्ञानसाधना और उससे फलित होने वाला ज्ञान दोनों ही सूचित होते हैं। 'अमानित्वम्' अदम्भित्वम्, आचार्योपासनम्, आदि प्राथमिक सद्गुणों से लेकर 'अध्यात्मज्ञान-नित्यत्वम् तत्वज्ञानार्थ दर्शनम्' तक सारा साध्य-साधन गीता ने 'ज्ञान' शब्द से भर दिया है। ठीक वैसे ही व्यापक अर्थ का यह 'उपनिषद्' शब्द है। उपनिषद् के विषय विवेचन का विस्तार इस व्यापक व्याख्या के अनुरूप ही है।

जर्मन दार्शनिक शोपनहावर जब मृत्यु-शय्या पर पड़ा था उस समय उसे उपनिषद् का अनुवाद प्राप्त हुआ, जिसे पढ़कर उसे इतना आत्मबल मिला कि वह स्वस्थ हो गया, वह विस्मय विमुग्ध होकर कहता है—'यह अनुपम ग्रंथ आत्मा की गहराइयों को हिलकोर डालता है। इसके प्रत्येक वाक्य से मौलिक, गम्भीर और बड़े ही ज्योतिष्मान विचार ऊपर उठते हैं। हमारे चारों ओर भारतीयता का वातावरण आप से आप खड़ा हो जाता है तथा ऐसा प्रतीत होता है मानो यह विचार हमारे आत्मिक बन्धु के विचार हों। हमारे मनों पर यहूदी संस्कार की जो रूढ़ियाँ और अंधविश्वास छाये हुए हैं वे उनके स्पर्श मात्र से एकबारगी धुल जाते हैं। सारे संसार में इसके जोड़ का कोई ग्रंथ नहीं हो सकता। जीवन भर में मुझे यही एक आश्वासन प्राप्त हुआ है तथा मृत्युपर्यन्त यह आश्वासन मेरे साथ रहेगा।

आधुनिक युग में उपनिषदों का प्रसार यूरोप में

आधुनिक समय में उपनिषदों पर दृष्टि सर्वप्रथम मुगल सम्राट शाहजहाँ के उदारचेता ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह की जाती है और उससे प्रभावित होकर दाराशिकोह ने (सन् 1640) काशी आदि से पण्डितों को बुलाकर छह माह तक उपनिषदों की व्याख्या को उनसे सुना। फिर स्वयं संस्कृत सीखी और सन् 1657 में बावन उपनिषदों का फारसी भाषा में अनुवाद पंडितों की देखरेख में प्रारम्भ किया। सन् 1657 से 1674 तक सत्रह वर्ष वह अनुवाद का कार्य करता रहा।

औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा भी दाराशिकोह से प्रभावित हुई। जब औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा ने अपने ताऊ को इस नयी मस्ती और प्रसन्नता में देखा तो एक दिन बोली—अब्बा! यह आपके भीतर जो मस्ती और शांति आ गई है यह कैसे आ गई है। दाराशिकोह ने कहा, मेरे द्वारा उपनिषदों का अध्ययन करने से। तब जेबुन्निसा कई दिन तक अपने विद्वान् ताऊ से इस अमृत भरे ज्ञान को प्राप्त करती रही।

कालान्तर में एक सौ वर्ष के बाद सन् 1757 में बंगाल के नवाब शुजाउद्दोला के दरबार में मिस्टर जटियल नाम का एक फ्रांसीसी राजदूत था। उसने किसी से फारसी के उन उपनिषदों को सुना और मस्त हो गया। वह फारसी के उपनिषद् फ्रांस ले गया। वहां एक सज्जन बर्नियर को दिए। बर्नियर पर भी जादू हुआ। उसने ये उपनिषद् इनका कुछ भाग पेरिस के बड़े पादरी डुपारन को सुनाया। वह प्रभावित हुआ। उसने निश्चय किया कि इन उपनिषदों को संस्कृत भाषा में पढ़ूँगा। पेरिस से भारत पहुंचा। 14 वर्ष तक संस्कृत पढ़ता रहा। फिर संस्कृत में उपनिषदों को पढ़ा। सन् 1801 में इसका लैटिन में अनुवाद किया जो जटिल एवं दुरूह था। उसकी एक प्रति जर्मनी के प्रख्यात विद्वान् एवं दार्शनिक शोपनहावर, जो रुग्ण होकर मृत्युशय्या पर पड़ा था, को भेंट की। उसको पढ़कर वह उछल पड़ा। इतना प्रमुदित एवं प्रसन्न हुआ कि वह स्वस्थ हो गया। वह कहता है—यद्यपि हमारे लिए संस्कृत को समझना कठिन है और हमारे पास वे साधन नहीं जिनसे ठीक रूप से हम संस्कृत के रहस्यों को समझ सकें। तो भी जहां तक हमने खोज की है....संसार में किसी भी पुस्तक का स्वाध्याय इतना लाभ देने वाला और आत्मा को ऊपर उठाने वाला नहीं जितना कि उपनिषदों का है। मेरी आत्मा को उपनिषदों से ही शान्ति मिली और मरने के पश्चात् भी इन्हीं से शान्ति मिलेगी।

मैक्समूलर कहता है—यदि शोपनहावर की बात को समर्थन करने की, प्रमाणित करने की आवश्यकता है तो इसका समर्थन मैं करता हूं। यद्यपि शोपनहावर किसी भी बात की जल्दी से प्रशंसा करने वाला नहीं था। 'India—what can it teach us' में वे लिखते हैं—जीवनभर मैंने उपनिषदों का अध्ययन किया है। स्वाध्याय किया है। उसके बल पर मैं कह सकता हूं कि शोपनहावर ने जो कहा है उस कथन की पुष्टि करता हूं।

पाल ड्यूसन कहता है—उपनिषद् मनुष्य की मेधा बुद्धि का अनमोल फल हैं। जीवन और मृत्यु के समय दुःख और कष्ट के समय नहीं अपितु हर समय प्रतिक्षण उनसे ऐसी शांति मिलती है जैसी और कहीं भी नहीं मिलती। भारत के लोगों के पास आत्मज्ञान और आत्म शांति का ऐसा कोष है जो संसार में और किसी के पास भी नहीं। मैं जब भारत की यात्रा के लिए गया तो बहुत सी लाभप्रद बातें मुझे मिली। परन्तु सबसे लाभदायक और सबसे महत्त्वपूर्ण है पवित्र भाषा में ऋषियों का ज्ञान देने वाले उपनिषद्।'

उसने यह भी कहा, 'अपने पड़ोसी को अपनी भांति प्रेम करो, यह ठीक है। किन्तु मैं ऐसा क्यों करूं? क्योंकि मैं अपने सुख-दुःख को स्वयं में अनुभव करता हूं, पड़ोसी में नहीं। इसका उत्तर बाइबिल में नहीं है। वेद में केवल तीन शब्दों में है—'तत्त्वमसि'। फ्रेंच दार्शनिक विक्टर कजिन्स ने कहा कि प्राच्य दार्शनिक ज्ञान की तुलना में यूरोपीय बुद्धि घुटने टेक देती है। जर्मनी के प्रख्यात विद्वान् फ्रेडरिक श्लेगल ने कहा है कि प्राच्य आदर्शवाद के सामने उच्चतम यूरोपीय दर्शन फीका पड़ जाता है।

सर डब्ल्यू हंटर ने लिखा—जिन समस्याओं को रोमन और ग्रीक नहीं सुलझा सके। जिन प्रश्नों ने मध्यकाल के विद्वानों तथा आधुनिक वैज्ञानिकों को उद्विग्न किया। उन सबका उत्तम और उचित उत्तर भारतीय दर्शनों में उपलब्ध है।

ह्यूम (Hume) ने Dogmas of Budhism में लिखा—मैंने अरस्तू, सुकरात, अफलातून और कितने ही अन्य विद्वानों के ग्रंथ बहुत ध्यान से पढ़े हैं। परन्तु जैसी विद्या इन उपनिषदों में मैंने देखी और जितनी शांति इनसे पाई, वैसी तो और किसी भी स्थान पर मुझे नहीं मिली।

आश्चर्य तो यह है कि उपनिषदों के प्रशंसकों में यूरोप के मर्डक प्रभृति पादरियों और प्रशासकों का बाहुल्य है। एनी बेसेन्ट ने उपनिषदों को मानव मन की सर्वोच्च उपज कहा।

उपनिषदों के ज्ञान ने पूरे यूरोप में एक वैचारिक तहलका मचा दिया और इसे ही भविष्य के विश्वधर्म के रूप में मान्यता मिलने लगी।

भारतीय दर्शन की छः विचारधाराएँ

श्री ए. एल. बशरम (A. L. Bashram) ने इन 6 विचारधाराओं को 'षड्दर्शन' नाम दिया है। इस संस्कृत शब्द का अर्थ ही दर्शन है। दर्शन का शाब्दिक अर्थ एक झलक या सत्य का दर्शन है। भारत में वेदों पर आधारित 6 पुरातन विचारधाराएँ हैं—न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, मीमांसा दर्शन और वेदान्त दर्शन।

इसके अतिरिक्त तीन अन्य विचारधाराएँ हैं :

चार्वाक, बौद्ध धर्म और जैन धर्म

Schools are different but not divergent—विचारधाराएँ भिन्न हैं किन्तु उनमें अलगाव नहीं। इन 6 विचारधाराओं में कहीं भी विरोध नहीं है। यह सब परम सत्य को देखने के अलग-अलग दृष्टिकोण हैं। इस प्रकार पूर्णता को पाने के 6 अलग अध्ययन हैं। न्याय दर्शन तर्क-वितर्क की प्रणाली है। वैशेषिक ब्रह्मांड की वैज्ञानिक व्याख्या है। यह ब्रह्माण्ड का सबसे पुरातन अणु सिद्धान्त (Atomic Theory) है। सांख्य इस क्षेत्र में और अधिक प्रवेश करता है और प्रकृति और पुरुष का भेद समझाता है। द्वैतवाद से ऊपर उठकर अद्वैतवाद आध्यात्मिक रूप से, अनुशासित ढंग से आत्म-ब्रह्म एक्य की अनुभूति का प्रयास है।

मीमांसा कर्म पर एवं वेदान्त ज्ञान पर अधिक ध्यान देता है। वेदान्त मानव की विचारधारा का शिखर है और ज्ञान पर विशेष जोर देता है। इस प्रकार ये 6 विचारधाराएँ शनैः-शनैः साधक को भौतिकवाद से उठा कर सार्वभौमिक शक्ति की स्वाधीनता में ले जाती हैं। यह परम पूर्णता तक पहुँचने की सीढ़ी है।

वेदान्त एवं भक्ति

श्री बशरम का विचार है कि वेदान्त सर्वोत्तम सिद्धान्त है। वास्तव में यह मनुष्य के विचारों की ऊँचाई है। केवल ज्ञानी ही इसे ठीक से समझ सकते हैं। इसलिये यह जनसाधारण का धर्म नहीं बन पाया। भारत में जनसाधारण भक्तियोग में विश्वास करता है। किन्तु सभी विश्वास करते हैं कि भक्ति का अन्तिम लक्ष्य

ब्रह्म चेतना का आभास अथवा साक्षात्कार करना है। अतः जनसाधारण का भी लक्ष्य वेदान्त है किन्तु बहुत थोड़े ही वेदान्त-योग का सही पालन कर पाते हैं। No Regional Idolatry in Philosophy वेदान्त में क्षेत्रीय मूर्तिपूजा का स्थान नहीं। भारतीय दर्शन की 6 धाराओं के किसी इष्टदेव का भारत के किसी प्रान्त से कोई सम्बन्ध नहीं है। वेदान्त बंगाल का एकाधिकार नहीं है। शंकराचार्य जो वेदान्त के सर्वोच्च व्याख्याकार थे, दक्षिण भारत (केरल) में पैदा हुए थे। आधुनिककाल में स्वामी रामकृष्ण के शिष्य स्वामी विवेकानन्द, जिन्होंने वेदान्त की आभा विश्व में फैलाई, का जन्म बंगाल में हुआ था। ऐसे ही वेदान्त के एक और महान् विद्वान् स्वामी रामतीर्थ पंजाब से थे। Vedant Transcend all deities वेदान्त मूर्तिपूजा से बाहर है। वेदान्त शिव पूजा, विष्णु पूजा, काली पूजा या ईसा मसीह की पूजा के साथ भी पालन किया जा सकता है। क्योंकि सभी का लक्ष्य परमसत्ता का ज्ञान पाना है और सभी मूर्तियाँ उस परम सत्य के अलग-अलग रूप ही हैं, तो केवल बाह्य नाम-रूप पर मतभेद हो ही नहीं सकता।

क्षेत्र या धर्म के नाम पर मतभेद नहीं

मुझे लगता है कि आपको विभिन्न धर्म-परम्पराओं में क्षेत्रीय या बौद्धिक मतभेद के विषय में सही सूचना नहीं मिली। हर राष्ट्र के इतिहास में कुछ ही ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं जब लोग धर्म के वास्तविक तत्त्व को भूलकर नाम और रूप के तुच्छ मामलों में मतभेद पर आ जाते हैं। भारत की वास्तविक स्थिति यह है कि एक परिवार में पति वैष्णव है, पत्नी शिव पूजक है और पुत्र काली का पूजक हो सकता है, पुत्री हनुमान्जी की पूजा करती है। हर मन्दिर में अनेक देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ होती हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने इष्टदेव को माध्यम बना कर परम सत्ता की उपासना कर सकता है।

यूरोप के इतिहास में एक ही धर्म की अलग-अलग पूजा प्रथा के लोगों में रक्तपात एवं युद्ध हुए हैं। भारत में पूजा पद्धति को लेकर किसी को दंडित या तंग नहीं किया जाता। इसीलिये भारत में आध्यात्मिक सहिष्णुता एवं वैचारिक परिपक्वता मिलती है। डॉ. एनी बीसेंट जो धर्म-दर्शन अभियान में अग्रणी रही हैं, उन्होंने भारत को विश्व का सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक केन्द्र कहा है।

संसार के देशों में भारत के प्रति लोगों का प्रेम एवं आदर उनकी बौद्धिक, नैतिक एवं अध्यात्मिक सम्पदा के कारण है।

—**प्रो. लूई रिनाऊ** (पेरिस विश्वविद्यालय)

दार्शनिक समस्या	चार्वाक दर्शन	जैन दर्शन	बौद्ध दर्शन
वेद प्रमाण	भोगवादी दर्शन होने के कारण वेद के अध्यात्म से दूर। अत: वेद प्रमाण नहीं।	कुछ वैदिक यज्ञों में पशु-बलि की बुरी रूढ़ि प्रचलित हो जाने के कारण जैन दर्शन ने वेद को स्वत:प्रमाण मानने से इनकार कर दिया।	वैदिक यज्ञों में पशुबलि होने के कारण वेद को प्रमाण नहीं माना।
अंतिम चरम सत्य Ultimate Reality	जड़ पदार्थ Matter	जीव (आत्मा) अजीव, पुद्गल पदार्थ।	All is Change. सब कुछ परिवर्तनशील है।
जगत्	जड़ जगत् ही सत्य है।	जगत् अध्रुव है।	सर्वं क्षणिकं सब परिवर्तन- शील है।
जीव (आत्मा)	शरीर से परे जीव नहीं है। यावज्जीवेत सुखं जीवेत ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।	जीव अजीव से भिन्न है, आत्मा (जीव) अमर है, अनन्त ज्ञान, अनन्त शांति।	आत्म चैतन्य की धारा, ज्ञान सरिता। Soul or self is a stream of conciousness
ईश्वर (सृष्टिकर्ता)	ईश्वर नहीं है।	सृष्टिकर्ता ईश्वर नहीं है। सृष्टि अपने आप प्रकृति से ही पैदा होती है। प्रत्येक आत्मा मुक्त होकर परमात्मा बन जाता है। अभी तक 24 तीर्थंकर मुक्त हुए हैं।	ईश्वर के विषय में मौन। मौन के तीन अर्थ— (1) स्वीकृति, (2) अस्वीकृति, (3) संशय। वास्तव में वे नैतिक पुनर्जागरण के एकमेव लक्ष्य की पूर्ति के लिये तत्त्व दर्शन के विवादों को टालना चाहते थे।
कर्मफल कर्म-सिद्धान्त	कोई कर्मफल सिद्धान्त नहीं।	कर्मफल सिद्धान्त अमिट है।	कर्मफल सिद्धान्त है।
कर्मफल प्रदाता कौन	कोई नहीं।	फलप्रद: कर्म। कर्म का फल स्वत: होता है। ईश्वर द्वारा नहीं।	फलप्रद: कर्म। कर्म फल है शेष मौन।
पुनर्जन्म	भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत:। पुनर्जन्म नहीं।	पुनर्जन्म होता है।	पुनर्जन्म होता है।
मोक्ष	नहीं	अर्हत्, मुक्ति	निर्वाण

की रूपरेखा (चार्ट)

सांख्य	न्याय वैशेषिक	पूर्वमीमांसा	वेदान्त
वेद स्वतः प्रमाण है।	वेद स्वतः प्रमाण है।	वेद स्वतः प्रमाण है।	वेद स्वतः प्रमाण है।
प्रकृति और पुरुष	ईश्वर-सृष्टिकर्ता	ईश्वर	आत्मा (ब्रह्म)
प्रकृति सत्य है।	जगत् सत् है।	जगत् सत् है।	ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या। ब्रह्म सत्य है, ब्रह्म को छोड़कर जगत् मिथ्या है।
आत्मा अमर है।	आत्मा अमर है।	आत्मा ही कर्ता एवं भोक्ता है।	आत्मा ही ब्रह्म है। आत्मा अकर्ता है, साक्षी है।
स्पष्ट नहीं। प्रकृति पुरुष मानता है।	सृष्टिकर्ता ईश्वर है।	कर्म को ही सृष्टि का आदिकारण मानता है।	सृष्टिकर्ता को मानता है, आगे चलकर ब्रह्म को ही जगत्, जगत् को ब्रह्म रूप मानना। Immanent Causality
कर्मफल सिद्धान्त है।	कर्मफल सिद्धान्त है।	कर्म ही सब कुछ है। कर्म ही ईश्वर है। यज्ञ ही भगवान् है। कर्म ही सर्वशक्तिमान है।	कर्मफल सिद्धान्त है।
दोनों बातें। एक शाखा स्वतःफल, दूसरी शाखा ईश्वर।	कर्मफल प्रदाता है ईश्वर।	कर्म ही फलप्रदाता है। कर्म ही भगवान् है।	ईश्वर ही कर्मफल प्रदाता है।
पुनर्जन्म होता है।	पुनर्जन्म होता है।	पुनर्जन्म होता है।	पुनर्जन्म होता है।
मुक्ति	मुक्ति	मुक्ति	मुक्ति व मोक्ष

प्रकृति के पांच तत्त्व (चार्ट)

पांच तत्त्व प्रकृति में				पिण्ड शरीर में पांच तत्त्व			
ब्रह्माण्ड में तत्त्व	विवरण	गुण	सूक्ष्म इन्द्रिय	इन्द्रिय		विकार	आयुर्वेद
पृथ्वी	स्थूलतम जड़ता सर्वाधिक	गंध	घ्राण तन्मात्रा	नासिका	पृथ्वी तत्त्व से	मोह	
जल	पृथ्वी से अधिक सूक्ष्म, व्यापक, महीन, शक्तिशाली	रस	रस तन्मात्रा	रसना	जल तत्त्व से	काम	
अग्नि	जल से अधिक सूक्ष्म	ताप, रूप, उष्ण, प्रकाश	चक्षु तन्मात्रा	चक्षु	अग्नि तत्त्व से	क्रोध	पित्त तत्त्व का प्रकोप
वायु	अग्नि से सूक्ष्म	स्पर्श	त्वक् तन्मात्रा	त्वचा	वायु तत्त्व से	लोभ	
आकाश	पांचों तत्त्व में सबसे सूक्ष्म	शब्द	शब्द तन्मात्रा	कर्ण	आकाश तत्त्व से	अहंकार	

वेदान्त की विज्ञान को चुनौती

जो आँख सारे संसार को देखती है, वह अपने आपको साक्षात नहीं देख सकती। जो मानव निखिल विश्व के रहस्य की खोज में तत्पर है, जो चाँद, सूर्य, सितारों का भेद जानने के लिए भी चिन्तातुर है, वह यदि स्वयं अपने आपको न जान सके तो कितना बड़ा दुर्भाग्य होगा?

द्रष्टा के बिना दृश्य सम्भव नहीं, ज्ञाता के बिना ज्ञेय सम्भव नहीं। आज का समूचा विज्ञान हमें दृश्य को दिखाता है, प्रकृति में एक तारतम्य अथवा सिद्धान्त की ओर भी संकेत करता है, किंतु उस द्रष्टा की सत्ता पर विचार नहीं करता जिसके कारण दृश्य सम्भव हुआ है। विज्ञान भौतिक जगत् के कुछ पहलुओं का ज्ञान अवश्य देता है, किन्तु किस ज्ञाता को वह ज्ञान प्राप्त हुआ, इस मौलिक प्रश्न को टाल जाता है, किन्तु यह प्रश्न टलने वाला नहीं है, क्योंकि ज्ञाता का निश्चय किये बिना ज्ञान की सत्यता पर भरोसा कैसे किया जा सकता है? यदि ज्ञाता अंधा है, तो उसके लिये दूध भी टेढ़ी खीर है, हाथी की सूंड एक अजगर सांप है, सौंदर्य एवं कौरूप्य समान है, प्रकाश एवं अंधकार में अंतर नहीं। अतः वेदान्त की घोषणा है—'जब तक ज्ञाता स्वयं अज्ञात है तब तक सब ज्ञात अज्ञान है।' सारा ज्ञान किसी न किसी ज्ञाता का ही साक्ष्य है। ज्ञाता विश्वसनीय नहीं तो उसका जाना हुआ सारा ज्ञान अज्ञान ही है। यदि तापमापक (थर्मामीटर) ही गलत है तो उसके द्वारा जाना हुआ सारा तापमान गलत है। अतः वेदान्त सारे ज्ञान के मूल 'ज्ञाता' की खोज करता है। सारे ज्ञान की कुंजी ज्ञाता में ही है। इसीलिये जब तक ज्ञाता का ही ठीक से पता नहीं, तब तक जो कुछ जाना वह मिथ्या ही जानो, जिसके अपने चक्षुओं में प्रकाश नहीं, उसके लिये सब प्रकाश अंधकार ही है।

विश्व के अनादि साहित्य वेद में उसी साक्षी, चैतन्य आत्मदेव से प्रार्थना की गई है—

ॐ असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय।

यह विज्ञान का युग है। विज्ञान के चमत्कारों की चकाचौंध से हर छोटा-बड़ा प्रभावित है। विज्ञान के अद्भुत आविष्कारों ने मानव हृदय पर अपनी विजय की छाप अंकित कर दी है। विज्ञान ने प्रकृति पर विजय पा ली है। उसने अन्तरिक्ष की विद्युत् को छोटे-छोटे बिजली के लट्टुओं में कैद कर लिया है, अन्तरिक्ष की ध्वनि-तरंगों को एक छोटी-सी पेटिका में बन्द कर लिया है, उसने कृत्रिम प्रकाश से रात को दिन में बदल दिया है, कृत्रिम वायु चलाकर तप्त भवनों को ठण्डा किया है, कृत्रिम वर्षा द्वारा वन्ध्या धरती को शस्य-श्यामला बना दिया है तथा कृत्रिम ग्रह, उपग्रह छोड़ कर नई सृष्टियाँ रचने का अभूतपूर्व उपक्रम किया है। एक सफल विजेता के समान विज्ञान ने अपनी विभूतियों के अतिरिक्त, अपना आतंक जमाए रखने के लिये अणुबम तथा परमाणु बम जैसे लोक-विध्वंसकारी अस्त्र भी बना लिये हैं। जनसाधारण यही मानने लगा है कि विज्ञान ही सर्वशक्तिमान परमेश्वर है। आज तो एटम ही अल्लाह है, भूत ही भगवान् बन गया है, किन्तु विज्ञान के सभी चमत्कारों को चुनौती देता हुआ भारत का एक काषाय वस्त्रधारी तरुण संन्यासी, विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द, भौतिकवाद के गढ़ के भीतर घुस कर उद्घोषणा करता है—'**तुम सब प्रभु की सन्तान हो, अमर आनन्द के हिस्सेदार, पवित्र और पूर्ण आत्मा।.....अरे शेरो! जागो, उठो और यह भ्रम उखाड़ कर परे फेंक दो कि तुम भेड़-बकरी हो। तुम अजर-अमर-अविनाशी, स्वतंत्र एवं आनन्द-निकेतन आत्मा हो। तुम भूत या पदार्थ नहीं हो, तुम केवल देहमात्र नहीं हो। पदार्थ तो तुम्हारा दास है, तुम पदार्थ के गुलाम कभी नहीं हो।**' वास्तव में देखा जाय तो विज्ञान के सारे आविष्कार मनुष्य ने ही किये हैं। स्वयमेव पदार्थ ने कोई चमत्कार नहीं किया। पदार्थ तो जड़ है, मानव में ही चैतन्य है। मानव के भीतर का चैतन्य एक स्वयंसिद्ध सत्य है। न उससे इन्कार किया जा सकता है और न उसे प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता है। वह स्वयं प्रमाणित है। फ्रेंच दार्शनिक देकार्त कहता है कि जितना मैं अपनी ही हस्ती पर सन्देह करता हूँ, उतना ही अधिक यह प्रमाणित होता है, क्योंकि सन्देह, बिना सन्देह करने वाले व्यक्ति के नहीं हो सकता। अतः मेरा सन्देह प्रमाणित करता है कि मैं अवश्य हूँ। अब मानव के भीतर का चैतन्य कहाँ से आया? जड़ तथा चेतन में बड़ा अन्तर है। मैं जानता हूँ कि एटम क्या है तथा एटम बम कितना विध्वंसकारी है, किन्तु एटम को स्वयं नहीं पता कि मुझे एटम कहते हैं तथा मुझमें कितनी शक्ति निहित है। मैं जंगल में वृक्षों को गिनता हूँ, वृक्ष मुझे नहीं गिनते। माली उद्यान को पहचानता है, उद्यान माली को नहीं पहचानता। बेचारी ऑक्सीजन गैस को स्वयं नहीं पता कि वह ऑक्सीजन है। अतः महिमा पदार्थ की नहीं, पदार्थ के ज्ञाता की है।

अब विश्व भर के वैज्ञानिक लाखों प्रयत्न करने के पश्चात् भी जड़ पदार्थ से चैतन्य जीवन पैदा नहीं कर सके हैं। पत्थर से दूध नहीं निचोड़ा जा सकता क्योंकि

उसमें वह तत्त्व है ही नहीं। हर ईमानदार व्यक्ति की चेतना विज्ञान के जड़वाद को चुनौती देती हुई प्रश्न करती है कि यदि पदार्थ ही अन्तिम सत्य है तो उसमें चेतन जीवों को उत्पन्न करने की शक्ति होनी चाहिए? पर मुर्दा जो स्वयं चैतन्यहीन है वह दूसरों को चैतन्य कैसे प्रदान कर सकता है?

आज कुछ महान् वैज्ञानिक ही विज्ञान में विश्वास खो बैठे हैं। सर जेम्स जीन्स, एडिंगटन, आईंस्टीन, श्रोडिंजर तथा प्रभृति महान् वैज्ञानिक पदार्थ से परे किसी चैतन्य की सत्ता में विश्वास करने लगे हैं। सर जेम्स जीन्स ने प्लेटो के 'रिपब्लिक' का निम्न रूपक देकर कहा है कि भौतिक विज्ञान का ज्ञान केवल सांकेतिक है, सत्य नहीं। कुछ कैदी एक ही पंक्ति में इस प्रकार शृंखलाबद्ध हैं कि वे केवल सामने ही देख सकते हैं। उनके पीछे अग्नि जल रही है। उनके और अग्नि के बीच में एक मंच पर कुछ व्यक्ति आ-जा रहे हैं। कैदियों को सामने की दीवार पर केवल उनकी छाया ही दिखाई देती है, असली व्यक्ति दिखाई नहीं देते। इस उपमा में जीन्स ने भौतिक वैज्ञानिकों को उन शृंखलाबद्ध कैदियों के समान कहा है जो सत्य को तो नहीं देखते पर उसकी अस्थिर छाया मात्र को ही सत्य मान लेते हैं।

उस के पीछे सत्य की ओर जाने का प्रयत्न प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानवेत्ता श्रोडिंजर ने किया। उसने एटम का विश्लेषण करते हुए देखा कि अन्त में इलैक्ट्रोन, प्रोटोन सब समाप्त होकर केवल एक 'रेडियोएक्टिव एनर्जी' एक अपदार्थमयी शक्ति ही बचती है, जो न जगह घेरती है और न वजन रखती है। अतः वह 'पदार्थ' नहीं है। भौतिकवाद के ऊँचे दुर्ग के मूल में यह प्रबलतम प्रहार हुआ है। या तो भूत की परिभाषा बदलनी पड़ेगी या यह मानना पड़ेगा कि विश्व की अन्तिम सत्ता भौतिक नहीं है।

महानतम वैज्ञानिक आईंस्टीन ने तो स्पष्ट कर दिया कि विज्ञान का सारा ज्ञान सापेक्ष एवं सीमित है, अनन्त ज्ञान इससे परे है। भौतिक ज्ञान को सीमित कह कर भगवान् शंकराचार्य ने भी यही बात कही थी। आईंस्टीन के मत में निरपेक्ष गति तथा निरपेक्ष स्थिरता एक ही तत्त्व के दो नाम हैं। यजुर्वेदान्तर्गत ईशा-वास्योपनिषद् में इसी आत्म तत्त्व के विषय में कहा गया है—

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वंतिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।

अर्थात् यह आत्मा निरन्तर गतिमान है तथा नितान्त स्थिर है, यह दूर से भी दूर है तथा निकट से भी निकट है। यह सब के भीतर भी है तथा सबके बाहर भी है।

विज्ञान कहता है पदार्थ ही चरम सत्य है और पदार्थ वह है जो जगह घेरता है और भार रखता है। भौतिकवाद इन्द्रियगम्य बाहरी जगत् को ही सत्य मानता है, किन्तु इन्द्रियों पर भरोसा करना कहाँ की बुद्धिमानी है। यदि आत्मा अथवा

परमात्मा को इसलिये असत्य माना जाये कि वे दिखाई नहीं देते तो हमें स्वयं, हमारी रीढ़ की हड्डी दिखाई नहीं देती, क्या वह नहीं है? निगोड़ी आँख का भरोसा ही क्या? वह एक सीमा के परे देख ही नहीं सकती। सूर्य आँख को चलता हुआ भासता है, पर वास्तव में वह चलता नहीं, धरती स्थिर दिखाई देती है, पर वस्तुतः वह बड़ी भारी गति से निरन्तर अपने अक्ष पर भी घूम रही है तथा सूर्य की प्रदक्षिणा भी कर रही है। इन्द्रियाँ स्वयं भी क्षणभंगुर हैं। वे शरीर के साथ पैदा होती हैं, उसी के संग क्षीण होती और मर जाती हैं। वे बेचारी चरम सत्य को कैसे जान सकती हैं? अनादि और अनन्त को शान्त एवं मरणधर्मा इन्द्रियाँ कैसे जान सकती हैं? यदि किसी द्रव्य का तापमान परखना हो तो तापमापक उस द्रव्य के तापमान से भी बड़े तापमान को सह सकने योग्य होना चाहिए। यदि 1000 अंश के ताप वाले द्रव्य को 100 दर्जे ताप मापने वाले थर्मामीटर से मापा जायेगा तो मापक यन्त्र तुरंत खण्ड-खण्ड हो जायेगा। यदि 10 मील लम्बी दौड़ का निर्णायक दो-चार मील दौड़ने के पश्चात् ही हांफकर गिर जाता है तो वह दौड़ में प्रथम स्थान पाने वाले का निर्णय कैसे कर सकता है। हम जानना चाहते हैं विश्व की अनादि, अनन्त सत्ता को और वह भी क्षणभंगुर, सीमित, मर्त्य इन्द्रियों के द्वारा। कबीरजी के शब्दों में—

गई पूतरी लौन की, थाह सिन्धु की लेन।
गल बल वह सिन्धु भई, कहे कौन अब बैन।।

इन्द्रियों से ऊपर मन है। पाश्चात्य दर्शन तथा मनोविज्ञान मन को ही चरम सत्ता मान बैठा है। देकार्त, बर्कले, हेगल, काण्ट जैसे विद्वान भी मन को ही आत्मा कह डालते हैं, किन्तु मन तो चंचल बन्दर की नाई है। यह मानव को खूब नचाता है, स्वयं क्षण-क्षण में बदलता रहता है, मर्त्य शरीर पर अवलम्बित है, इसे चरम सत्य मानने से तो अनर्थ हो जायेगा। मन से परे बुद्धि है। पाश्चात्य विचारक अपनी ऊँची से ऊँची उड़ान में बुद्धि के वैभव तक ही पहुँचते हैं, किन्तु यदि बुद्धि ही चरम सत्ता होती तो बुद्धि कभी भूल न करती, स्वयं सीमित न होती तथा हमें कभी पछता कर यह न कहना पड़ता—हाय ! उस समय मेरी अक्ल मारी गई थी। इसका अर्थ है हम बुद्धि की भी त्रुटियों के साक्षी, बुद्धि से भी ऊपर और कुछ हैं। हम अजर-अमर, अविनाशी, स्वयं ज्योति, प्रकाशमान, आत्मा हैं। गीता-गायक श्रीकृष्ण के शब्दों में—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य परं मनः।
मनसस्तु परां बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।। 3/42

इन्द्रियाँ शरीर से परे हैं, इन्द्रियों से भी परे मन है, मन से भी परे बुद्धि है और जो बुद्धि से परे है वह हमारा स्वयं ज्योति ज्ञानस्वरूप आत्मा है।

यह आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है, स्वयं ज्ञेय है तथा स्वयं ज्ञाता है। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय की त्रिपुटी आत्मज्ञान हो जाने पर एक अखण्ड चैतन्य में विलीन हो जाती है। इसीलिये उपनिषद् कहते हैं—**आत्मानं विद्धि**—हे मनुष्य, अपने आपको जान। ब्रह्मसूत्र गाते हैं—

अयं आत्मा ब्रह्मं—यह आत्मा ही ब्रह्म है।

पुनः **तत्त्वमसि,** वह तू ही है।

इसी भाव को महाकवि इकबाल ने प्रकट किया है—

ढूंढ़ता फिरता हूँ मैं, इकबाल अपने आपको।
आप ही गोया मुसाफिर, आप ही मंजिल हूँ मैं।।

अपने आपको पाना ही सब कुछ पाना है। किसी दूसरे की उपासना किसी न किसी अंश में गुलामी की ही सूचक है, चाहे वह स्वयं ईश्वर की ही उपासना क्यों न हो। वेदान्त कहता है, तू आत्मोपासक बन। वही अन्तर्यामी ब्रह्म तेरे भीतर है, तू स्वयं वह है। यही पूर्ण मोक्ष है, पूर्ण स्वातंत्र्य है, पूर्ण स्वराज्य है। जर्मनी के विचारक काण्ट का कथन है—'मानव, तू अपने आपके लिये स्वयं ही विधि बन जा।' वेदान्त की घोषणा है—'हे मानव, बनने बनाने का कोई प्रश्न नहीं, तू विधि नहीं स्वयं विधानों का विधाता है, तू स्वयं ईश्वर है, केवल अपनी चर्म दृष्टि को त्याग दे, स्वयमेव आत्मालोक प्रकाशित हो उठेगा।'

नोबल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध जीव शास्त्री एलेक्सिस कैरल अपनी पुस्तक 'मैन दी अननोन' में कहती है, 'हमें बाह्यजगत् में जैसी सफलता मिली है वैसी अन्तर्जगत् में नहीं मिली वरन् प्रारम्भिक स्थिति में है। और जिस चेतन के सामर्थ्य से न्यूटन और आईंस्टीन द्वारा महत्त कार्यों का निर्माण हुआ है, उसका महत्त्व हम नहीं समझ सके, यह हमारा दुर्भाग्य ही है।'

× × ×

बी.बी.सी. के उद्घोषकर्ता, पत्रकार व लेखक मार्क टूली ने देहरादून के वेल्हम स्कूल के विद्यार्थियों को 69वें स्थापना दिवस पर मुख्य अतिथि के रूप में कहा—जब पश्चिम स्वयं अपने जीवनमूल्यों पर पुनर्विचार कर रहा है, तब आपका अपनी संस्कृति को बचाते हुए असली भारत बनना ज्यादा सातत्यपूर्ण है, नकली अमरीका बनने की अपेक्षा।

भारतीय दर्शन द्वारा आधुनिक समस्याग्रस्त समाज का मार्गदर्शन

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमारे संस्थान के एक शोधकर्ता छात्र श्री पारसनाथ प्रसादसिंह ने गोरखपुर विश्वविद्यालय से एम. ए. दर्शन परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत भारतीय दर्शन में शोधकार्य करने के लिए उक्त विश्वविद्यालय की स्वीकृति प्राप्त कर ली है।

मैंने यह अनुभव किया है कि अधिकांश विश्वविद्यालयों में दर्शन तथा अन्य विषयों पर भी जो शोधकार्य होते हैं, उनमें देश की सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा, सर्वाधिक अर्थसाधन, उच्च मार्गदर्शक विद्वत्ता, सर्वाधिक परिश्रम एवं जीवन का सर्वाधिक मूल्यवान काल-खण्ड लगने के उपरान्त भी उनसे प्राप्त होने वाली सामाजिक उपयोगिता, मानवीय शक्ति के व्यय की तुलना में प्रायः नगण्य ही होती है। बड़े-बड़े विद्वानों के शोध-प्रबन्ध भी अधिकांशतः शोध-पुस्तकालयों की अलमारी की शोभा मात्र ही बढ़ाते हैं तथा उनसे लाभ लेने वाले विद्यार्थी एवं सुधीजन बहुत ही कम मात्र में मिलते हैं।

विगत अनेक वर्षों के शैक्षणिक तथा समाजसेवी जीवन के अनुभव के आधार पर मैंने यह देखा है कि विशेष रूप से दर्शन के क्षेत्र में शोध-प्रबन्धों के विषय इतने शास्त्रीय (Academic) तथा सैद्धान्तिक (Theoretical) चुने जाते हैं कि प्रत्यक्ष क्रियात्मक जीवन में उनकी उपयोगिता प्रायः नगण्य ही होती है। इसका एक दुष्परिणाम तो यह होता है कि समाज को दर्शन द्वारा मार्गदर्शन नहीं मिलता तथा दूसरी ओर दर्शन की विधिवत् शिक्षा न पाने वाले सामान्य बुद्धिजीवियों को उक्त शोध-प्रबन्ध पढ़ने की रुचि ही पैदा नहीं होती। फलतः समाज पथ-प्रदर्शन विहीन होकर गिरता जाता है तथा दर्शन का विषय प्रतिष्ठाविहीन होकर अलोकप्रिय होता जाता है।

एक ओर हम विश्वभर में डिंडिम (डुगडुगी) बजाते रहते हैं कि हमारा देश भारत दर्शन की जन्मभूमि है, भारतीय दर्शन सर्वश्रेष्ठ है; वेदान्त में मानवीय मनीषा अपने सर्वोच्च शिखरों पर पहुँची इत्यादि-इत्यादि। किन्तु दूसरी ओर इस

दार्शनिकों के देश की वर्तमान स्थिति इतनी पतित एवं आदर्शभ्रष्ट हो चुकी है कि हमारे सहित सारा संसार विस्मित है कि क्या उच्च दर्शन का तार्किक परिणाम पतित-जीवन ही हो सकता है?

आज समाज अनास्था के कीड़ों से ग्रस्त है, आध्यात्मिक दृष्टि से मानव दिवालिया हो चुका है, नैतिक मूल्य लगभग पूर्णतया मूल्यहीन से हो गये हैं, देश में चारित्रिक पतन अपनी पराकाष्ठा पर है। नास्तिकता, कामुकता, हिंसा, घूसखोरी, अविनय, अवज्ञा, विद्रोह, संवेगात्मक अस्थिरता आदि आत्मघाती प्रवृत्तियाँ समाज में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं। व्यक्ति, परिवार, समाज, संस्थाएँ सभी भ्रष्टाचार के पिशाच से पीड़ित हैं। पतन का चित्र कितना हृदय विदारक है।

आज आश्रम व्यवस्था विशृंखलित हो चुकी है। ब्रह्मचर्य तो प्रायः भोगचर्य ही बन चुका है। गृहस्थाश्रम जो ऋण-चतुष्टय को चुकाने हेतु पंच महायज्ञ का धर्म-मंच था वह आज कामोपभोग एवं अर्थ लिप्सा का खुला लीला-मंच बना हुआ है। वानप्रस्थ परम्परा लुप्त हो चुकी है। संन्यासाश्रम में भी अधिकांशतः लोकसंग्रह के स्थान पर धन-संग्रह की प्रवृत्ति दिखलाई देती है। जीवन की कुण्ठा की प्रतिक्रिया में संसार छोड़ने वाले 56 लाख साधुओं द्वारा भी अधिकांशतः कोई समाजोपयोगी कार्य नहीं हो रहा है। भगवे वेश की आड़ में अनेक रावण भी क्रियाशील हैं। समाज का गुरु ब्राह्मण वर्ग अपना कुलधर्म त्याग कर नौकरी या व्यवसाय के लिये भाग-दौड़ कर रहा है। क्षत्रिय जो समाज की ढाल था, वह या तो शक्ति के मद में आततायी हो गया है या परकीय आततायी (चीन, पाकिस्तान) के भय से भीरु। देश की 16000 (सोलह हजार) वर्गमील भूमि चीन के पंजे में पड़ी हुई है और लगभग 30000 (तीस हजार) वर्गमील भूमि (काश्मीर में) पाकिस्तान ने हथिया रखी है। वैश्य समाज जो समाज-भण्डारी था, वह आज अधिकांशतः समाज-लुंठक बन रहा है। शूद्र सेवापरायण न होकर अधिकार-लिप्सु बन गया है।

आज धर्म तो व्यवसाय बन गया है। समाज-धर्म का तो प्रायः पूर्ण लोप ही हो चुका है। परकीय धर्म एवं समाजों के आक्रमणों से स्वकीय समाज का संख्याबल क्षीण हो रहा है तथा इस प्रकार देश में विभाजन के विषबीज बोये जा रहे हैं।

अर्थ, जो धर्म की सेवा का साधन था, आज धर्म के बिना अनर्थ का कारण बन रहा है। अर्थ शुचिता के अभाव में लोग आज भ्रष्ट विधि से अर्थ संचय में लगे हुए हैं। इसी कारण चोर बाजारी, घूसखोरी, शोषण, चोरी, डकैती, छल-छद्म, जुआ एवं मुनाफाखोरी का राज्य है। अर्थार्जन के लिये उचित तप एवं धैर्य के अभाव में बेकारी, भिक्षावृत्ति, परावलम्बन आदि पापाचार उत्पन्न हो रहे हैं।

काम पर धर्म का अंकुश लुप्त हो जाने से व्यभिचार, पापाचार, दुराचार, यौन-भ्रष्टाचार का बोलबाला है।

अधिकांश मुमुक्षुजनों की मोक्षसाधना भी समाज की भीषण उपेक्षा पर आधारित है तथा जीवन्मुक्त पुरुषों के लोकसंग्रह आदर्श की विस्मृति हो चुकी है।

आज व्यक्ति एक ओर परम स्वार्थी बन रहा है, दूसरी ओर समाजवाद के अभारतीय ढाँचे में व्यक्तित्व-विहीन हो रहा है। स्वार्थी होने पर वह समाजद्वेषी बनता है और व्यक्तित्व-विहीन होने पर समाज (शासन) का गुलाम बन जाता है।

आज परिवार की मर्यादा की दीवारें डगमगा गयी हैं। रामायण में प्रतिपादित पारिवारिक आदर्श पूर्णतया विस्मृत हो रहे हैं। परिवार जो सभी नैतिक एवं सामाजिक जीवनमूल्यों का सुन्दरतम पालना माना जाता था, आज स्वयं ही महत्त्व विहीन माना जा रहा है।

विद्या-मन्दिरों के पवित्र वातावरण में आज सर्वत्र अविनय, अवज्ञा, राजनीतिक स्पर्द्धा एवं युवा विद्रोह व्याप्त है।

कार्यालयों में कार्यशीलता के वातावरण का पूर्णतया अभाव है।

कर्मशालाओं में कर्म की वृत्ति का अभाव तथा आन्दोलन वृत्ति का प्रभाव है।

सामाजिक संस्थाओं में दानराशि का दुरुपयोग तथा असामाजिक तत्त्वों का नेतृत्व है।

समाज अनास्था के कीड़ों से ग्रस्त है। मानव को न अपने पर विश्वास रहा है न समाज पर और न परमसत्ता पर ही।

राजनीति में सर्वत्र पदलोलुपता, दलसंघर्ष व्याप्त हैं तथा समाजसेवा की भावना का लोप है।

नारी जो विश्व की सर्जक मातृशक्ति है, आज भोग का उपकरण मात्र बन कर यौन व्यभिचार का शिकार बन रही है।

दो वर्ष पूर्व विदेशी पादरियों द्वारा भारत की हजारों पुत्रियों को यूरोपीय देशों में पापाचार एवं दासवृत्ति में बेचना तथा केरल, मैसूर, आन्ध्र, तमिलनाडु की सहस्रों-बालाओं को नौकरी के प्रलोभन में अरब देशों में बेचा जाना मानवता के माथे का घोरतम कलंक है। समाज में नारी की नग्नता तथा चलचित्रों की अश्लीलता आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता का दारुण अभिशाप है, बालक, जो राष्ट्रवाटिका के नन्हे पादप हैं, विदेशी सभ्यता की भद्दी नकल करने वाली कृत्रिम शिक्षा पद्धति से कुसंस्कारित हो रहे हैं।

ऐसी परिस्थिति में प्रामाणिकता से यह विचार करने की आवश्यकता है कि हमारा दर्शन इस परिस्थिति में हमारा क्या मार्गदर्शन कर सकता है और वह किस प्रकार सम्भव है?

उक्त सब समाजोपयोगी प्रश्नों को दृष्टि में रख कर मैंने शोधकर्ता छात्र श्री पारसनाथ प्रसादसिंह को यह सुझाव दिया है कि वे अपने शोध का विषय रखें—

'भारतीय दर्शन द्वारा आधुनिक समस्याग्रस्त समाज का मार्गदर्शन।'

क्योंकि इस विषय पर गम्भीरता से विचार करके बहुत कम साहित्य लिखा गया है, इसलिए इस महान् ऐतिहासिक कार्य के लिए हमने विचार किया है कि देश के प्रबुद्ध मनीषियों एवं बुद्धिजीवियों से प्रत्यक्ष मार्गदर्शन प्राप्त किया जाय। इसी हेतु आपकी सेवा में यह पत्र प्रेषित किया जा रहा है, ताकि आप जैसे भारतीय संस्कृति के उद्‌भट विद्वान् तथा महान् चिन्तक के विचारों को हम उक्त शोध प्रबन्ध में उचित महत्त्व देकर प्रस्तुत कर सकें तथा इस प्रकार आपकी मनीषा द्वारा आज के पतित समाज के पुनरुत्थान हेतु मार्गदर्शन मिल सके। मैं आपका बहुत बड़ा आभार मानूँगा यदि आप लगभग दो सप्ताह के भीतर अनुमानतः आठ पृष्ठ का एक मन्तव्य लिख भेजने की अनुकम्पा करेंगे जिसमें निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया गया हो—

(1) भारतीय दर्शन की जीवनोपयोगी महत्ता।

(2) आधुनिक भारतीय समाज के पतन का नग्न-चित्र।

(3) समाज के पतन के कारणों का विश्लेषण।

(4) भारतीय दर्शन द्वारा समाज के पुनरुत्थान के लिए क्रियात्मक मार्गदर्शन।

1. भारतीय दर्शन की जीवनोपयोगी महत्ता

क. दर्शन जीवन-दृष्टि है।

ख. दृष्टि का प्रकाश तथा पथ का आलोक।

ग. मानवता को सत्यम् एवं ऋतम् का आलोक देने वाला दीप-स्तम्भ।

घ. इहलोक तथा परलोक का सुधार। आत्म-मोक्षार्थ जगत हिताय।

ङ. विचार द्वारा आचार का नियन्त्रण।

च. मानवीय जीवनमूल्यों के विकास में धर्म-दर्शन की देन।

2. आधुनिक भारतीय समाज के पतन का नग्नचित्र

क. ब्रह्मचर्य भोगचर्य।

ख. गृहस्थ, काम एवं अर्थ का लीला-मंच।

ग. वानप्रस्थ, परम्परा लुप्त।

घ. संन्यास में लोकसंग्रह का अभाव।

ङ. ब्राह्मण, नौकरी के पीछे।

च. क्षत्रिय, आततायी या भीरु।

छ. वैश्य, समाज-लुंठक।

ज. शूद्र, अधिकारलिप्सु।

झ. धर्म, व्यवसाय मात्र।

ञ. अर्थ, अनर्थ का कारण।

ट. धर्म विहीन काम, व्यभिचार का कारण।

ठ. मुमुक्षुजनों द्वारा समाज की उपेक्षा।

ड. व्यक्ति, स्वार्थी या समाज का गुलाम।

ढ. परिवार, मर्यादाविहीन।

ण. कार्यालय तथा कर्मशालाओं में कर्म का अभाव, आंदोलन का प्रभाव।

त. संस्थाओं द्वारा दानराशि का दुरुपयोग।

थ. अनास्था के कीटाणु।

द. राजनीति में पदलोलुपता।

ध. नारी, भोग का उपकरण।

न. बालक, विदेशी शिक्षा पद्धति से कुसंस्कारित।

3. समाज के पतन के कारणों का विश्लेषण

क. सिद्धांत और व्यवहार के बीच की खाई (The gulf between theory and practical)।

ख. संस्कृति (Culture) और संस्कार (conduct) के बीच की खाई।

ग. समाज धर्म और व्यक्ति धर्म के बीच की खाई।

घ. इहलोक तथा परलोक में भेद।

ङ. अति पारलौकिकता का कुप्रभाव।

च. शंकराचार्य के जगन्मिथ्या सिद्धान्त की भ्रांत व्याख्याएँ।

छ. बौद्धों-जैनों का सर्व क्षणिकं-क्षणिकं सिद्धान्त का कुप्रभाव।

ज. मृत चार्वाक दर्शन का भूत सारे समाज को ग्रस रहा है।

झ. कार्ल मार्क्स का प्रभाव।

ञ. पाश्चात्य भौतिकता का प्रभाव।

ट. पाश्चात्य अर्थवाद का प्रभाव।

ठ. पाश्चात्य नग्नतावाद का प्रभाव।

ड. पाश्चात्य धर्मों का प्रभाव।

ढ. आवारा (Nomadic) सभ्यताओं का भारतीय समाज पर आक्रमण।

ण. जीवन्मुक्ति के स्थान पर परामुक्ति का मोह।

त. लोक संग्रह आदर्श की उपेक्षा।

थ. ज्ञान तथा कर्म की भ्रांत व्याख्या (कर्म, अकर्म, विकर्म, नैष्कर्म्य)।

द. बौद्ध-जैनों की अव्यावहारिक अहिंसा का प्रभाव।

ध. सम्प्रदायों का धर्म-द्वेष तथा पारस्परिक विद्वेष।

न. दार्शनिक दुराग्रह (दर्शन की अति तार्किकता का धर्मनिष्ठा पर प्रभाव)।

प. सद्गुण विकृति।

(i) उदारता (ii) क्षमा (iii) अहिंसा (iv) दान

फ. अव्यवस्थित दान बनाम व्यवस्थित दान।

ब. आत्मगौरव शून्यता तथा परमुखापेक्षिता।

4. भारतीय दर्शन द्वारा समाज के पुनरुत्थान के लिए क्रियात्मक मार्गदर्शन

1. क. ब्रह्मचर्य द्वारा जीवन विकास।

   ख. ब्रह्मचर्य द्वारा मनःशक्तियों का विकास।

   ग. ब्रह्मचर्य तेज तथा ओज का विकास।

   घ. यम-नियम (योग दर्शन)।

   ङ. वेदान्त की पात्रता।

   च. प्राचीन गुरुकुलों में ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा।

   छ. आज के शिक्षा-मन्दिरों में ब्रह्मचर्य की पुनर्प्रतिष्ठा की आवश्यकता।

   ज. ब्रह्मचर्य से यौन भ्रष्टाचार का अन्त तथा मातृशक्ति की पुनर्प्रतिष्ठा।

   झ. आधुनिक मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण तथा ब्रह्मचर्य।

2. गृहस्थ के सामाजिक आदर्श : ऋण चतुष्टय, पंच महायज्ञ, नैतिक एवं सामाजिक जीवनमूल्यों की सुन्दरतम पालना, रामायण के पारिवारिक आदर्शों का आज के युग में मूल्यांकन, मार्क्स के विचारों का आलोचन, मातृ-पितृ-गुरु वंदना का महत्त्व।

3. वानप्रस्थ एवं संन्यास का सामाजिक आदर्श।

4. आज के युग में वर्ण-व्यवस्था का वैज्ञानिक पुनर्मूल्यांकन।

5. शिक्षा पद्धति का भारतीयकरण।

6. समाज धर्म का स्वरूप।
7. सेवा धर्मो परम् गहनो।
8. व्यावहारिक वेदान्त।
9. यथार्थ एवं आदर्श का समन्वय।
10. ब्रह्मतेज एवं क्षात्रतेज का समन्वय।
11. विचार को आचार में साकार करना होगा।
12. भारतीय नीति धर्म का क्रियान्वयन।
13. सिद्धान्त की कसौटी कृति।
14. दर्शन समाज का मार्गदर्शन करे तभी सार्थक।

कृपया कुछ ऐसे ग्रन्थों एवं लेखकों की सूची भी प्रेषित करें जो इस समस्या के समुचित निदान एवं उपचार के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकें। आशा है कि इतनी महान् दर्शनधारा वाले, अतीतकाल के जगद्गुरु देश को वर्तमानकाल की विपन्नावस्था से निकाल कर पुनः एक गौरवशाली भविष्य की ओर ले जाने के महान् कार्य में आप भी उचित मार्गदर्शन अवश्य देंगे।

भारत शाश्वत व अमर है। इसकी कई सभ्यतायें इतनी प्राचीन हैं कि इतिहास के दो राहों पर लुप्तप्राय प्रतीत होती हैं। इसके पास चिर-युवा रहने का उपहार है।

—नानी पालखीवाला

जैन दर्शन

जैन—जिन-जीत धातु से बना है।

जिसका अर्थ है जीतना।

जिसने मन और इन्द्रिय को जीत लिया है उसे जिन कहते हैं। और जो जिन के सिद्धांतों को मानने वाले हैं उसे जैन कहते हैं।

हिन्दू धर्म की पाँच शाखायें हैं—

सनातनीयाः समाजाः सिक्खाः जैनाश्च सोगताः।
स्वे-स्वे कर्मण्यभिरताः भावयेयुः परस्परम्।। —मालवीयजी

हिन्दू धर्म के सभी पंथ-संप्रदायों के चार समान दार्शनिक सिद्धांत हैं—

1. आत्मा की अमरता,
2. जीवन का अंतिम लक्ष्य-मोक्ष,
3. जब तक मोक्ष नहीं मिला तब तक पुनर्जन्म,
4. कर्म का सिद्धांत।

पहले दोनों सिद्धांत शाश्वत सिद्धांत हैं, बाद के दोनों सिद्धांत पुनर्जन्म और कर्म सिद्धांत अंतरिम सिद्धांत हैं। मोक्ष में पुनर्जन्म और कर्म का सिद्धांत लय हो जाता है। आत्म तत्त्व और मोक्ष तत्त्व एकाकार हो जाता है क्योंकि मोक्ष का अर्थ ही है आत्मदर्शन या आत्मोपलब्धि।

24 तीर्थंकरों में प्रथम ऋषभ देवजी हैं जो हिन्दू धर्म में भगवान् विष्णु के 24 अवतारों में से एक माने जाते हैं। इनकी कथा सनातन धर्मग्रंथों में खूब मिलती है। इनका पुत्र भरत चक्रवर्ती सम्राट था। इन्हीं के नाम पर इस आर्यावर्त्त का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ।

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में चार भरतों की महिमा गूंज रही है—

1. ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट् भरत
2. राजा दुष्यन्त एवं शुकन्तला के पुत्र वीर भरत

3. रामायण के काल के राम के भाई भरत

4. संस्कृत के नाट्य शास्त्र के विद्वान लेखक भरत

1. भारत भूमि जिनके नाम पर भरतनाट्यम अभी तक प्रचलित है। पहले भरत चक्रवर्ती सम्राट् पद से उपराम होने के पश्चात् एक आदर्श अवधूत बन गये।

2. दूसरे भरत वीर एवं कुशल शासक थे।

3. रामायण काल के भरत अनन्य निष्काम भक्त थे।

4. साहित्य के महान द्रष्टा थे।

23वें तीर्थंकर पारसनाथजी थे जिन्हें हजारीबाग जिला में पारसनाथ पहाड़ी पर निर्वाण प्राप्त हुआ।

20वें तीर्थंकर भगवान् नैमिनाथ भगवान् कृष्ण के चचेरे भाई थे। इस तरह जैन समाज हिन्दू समाज का एक अभिन्न अंग ही बना रहा है।

जैन धर्म आत्मा को अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त आनंदस्वरूप मानता है।

जैन दर्शन सृष्टिकर्ता ईश्वर को नहीं मानता किन्तु वे यह मानते हैं कि हर आत्मा मुक्त होने पर परमात्मा बन जाती है अतः उसके लिये परमात्मा एक अंतिम आदर्श तो है पर सृष्टि के खेल का जन्मदाता नहीं है। वह सृष्टि का उद्घाटनकर्ता नहीं है वरन् समापनकर्ता अध्यक्ष है।

प्रश्न उत्पन्न होता है सृष्टि बनायी किसने?

उत्तर—स्वतः प्रकृति से बनी है। यहाँ वे आधुनिक विज्ञान से आधी सहमति मानते हैं।

जब हर आत्मा मुक्त होने पर परमात्मा बनता है तो परमात्मा अनेक होते जाते हैं। इसलिये अनेकात्मवाद मानता है। सनातन धर्म एकांतवाद या वेदान्तवाद को मानता है।

क्या परमात्माओं की कोई संख्या जैन धर्म कहता है? अभी तक 24 तीर्थंकर ही 24 भगवान् बने हैं। उनके अतिरिक्त कोई अन्य मुक्त नहीं हुआ और इस कल्प के अंत तक कोई मुक्त नहीं होगा।

मुक्त आत्माओं को तीर्थंकर कहते हैं। इसका अर्थ तैरने वाले या तारने वाले हैं।

पुनर्जन्म—जैन धर्म की मान्यता है छोटे जीव हमारे ही छोटे भाई हैं। उन सब योनियों से होकर ही मनुष्य बने हैं। अतः हमें छोटे-छोटे जीवों पर दया करनी चाहिये। उनको सताना नहीं चाहिये।

कर्मफल भी जैन धर्म अटल मानता है। पर कर्मफल देता कौन है? इस विषय में उनका मत वैदिक धर्म से भिन्न है। वैदिक धर्म में कर्मफलदाता ईश्वर को माना गया है। पर जैनमत में कर्मफल अपने आप कर्म से ही उत्पन्न होता है जैसे कारण से कार्य, आग से वस्तु जलती है यहाँ भी वे जड़ विज्ञान की मान्यता के समान भूल जाते हैं कि जब एसिड नीले लिटमस को लाल करता है या फासफोरस कागज को जलाता है। वह दोनों वस्तुएं जड़ हैं, वहाँ जो कार्यकारण का सिद्धांत लागू होता है वह चेतन मनुष्य पर लागू नहीं हो सकता। जैसे भूखे को रसगुल्ला देने पर और प्रतिक्रिया, दुःखी होने पर और प्रतिक्रिया, चिंतित होने पर और प्रतिक्रिया, चिढ़ाने की भावना से देने पर और प्रतिक्रिया। डूबने वाले व्यक्ति को 6 व्यक्ति भिन्न-भिन्न भावनाओं से बचाते हैं। कोई ऋण चुकता करने के लिये, पुलिस अफसर फांसी देने के लिये, कोई गवाही पेश करने के लिये, कोई सरकारी कागजातों पर हस्ताक्षर करवाने के लिये, भाई ममत्व के कारण, मित्र ममत्व भाव के कारण और कोई निःस्वार्थ भाव से। वह न भाई है, न मित्र है, न पुलिस अफसर है, न कर्जदाता है। अतः कर्म का निर्णायक और कर्मफल प्रदाता, सर्वान्तरयामी, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान होना चाहिये।

पंच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

तीन रत्न—जैन धर्म में गीता के ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग के साधन तीन रत्न माने गये हैं। जिन तत्त्वों के समन्वय से मनुष्य सदाचारी बनता है।

क. सम्यक् दर्शन, ख. सम्यक् ज्ञान, ग. सम्यक् चरित्र।

बंधन का कारण—जब आत्मा संसार में बाहर के कर्म करता है तो उन जड़ पदार्थों का संस्कार आत्मा को मैला कर देता है। इसे आश्रव कहते हैं। जैसे गांव का मैला पानी स्वच्छ सरोवर में पहुँचकर उसे गंदला कर देता है या भीगे वस्त्र पर धूल पड़ जाती है उसी प्रकार जड़ वस्तुओं के मैले संस्कार बहकर आत्मा में आश्रव कर गंदला कर देती है।

चार कषाय—चार प्रकार का मैल जो आत्मा की ओर बहता है। वह है—क्रोध, अभिमान, कपट, लोभ।

वैदिक धर्म और बौद्ध धर्म में मन के पांच महाशत्रु गिनाये गये हैं—

काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार। इसे ही पंच क्लेश भी कहते हैं।

संवर—जैन मत में आत्मा के मैल को हटाने का एक उपाय संवर है। इसका अर्थ है प्रवाह को रोक देना। अर्थात् जो गंदगी का प्रवाह जड़-पदार्थों से आत्मा को गंदा करने आ रहा था उसे रोक देना। इसलिये इन्द्रिय निग्रह एवं संयम आवश्यक है।

निर्जरा—जो विषयों के मैल पहले से आत्मा में प्रवेश कर चुके हैं उसे नष्ट करने के लिये तपस्या, व्रत, उपवास आदि आवश्यक हैं। इस तरह आश्रव रोकने के लिये संवर और पहले घुस चुके मैल को निकालने के लिये निर्जरा उपाय है। निष्काम कर्म द्वारा बहुत उत्तम निर्जरा हो जाता है। और चित्त शुद्ध हो जाता है।

दो प्रकार का बंध

आश्रव के कारण जो आत्मा को बंधन आता है वह दो स्तर का है—

1. द्रव्य बंध—जब मनुष्य वस्तुओं के लिये लालायित होता है तब द्रव्य बंध कहलाता है। जैसे शराबी शराब का।

2. भाव बंध—जब विषय-वस्तु न मिलने पर व्यक्ति उस विषय की प्रकट मांग तो नहीं करता किन्तु मन ही मन उस विषय की वासना करता रहता है जैसे किसी शराबी के अति निर्धन हो जाने पर वह कई वर्षों तक शराब तो नहीं पी सकता किन्तु उस विषय का रस उसके मन में बना रहता है। वह शराबियों की बातों में रुचि लेता है और वैसा ही साहित्य पढ़ता है। उसी प्रकार गीत सुनकर झूमने लगता है।

द्रव्य बंध संवर के द्वारा रोका जाता है और भाव बंध निर्जरा द्वारा।

स्याद्वाद—एक वस्तु के बहुत से पहलू होते हैं। यह आवश्यक नहीं कि एक ही बात पूर्ण रूप से सटीक हो। दूसरी बात भी ठीक हो सकती है, तीसरी बात भी ठीक हो सकती है। यह सिद्धांत सहिष्णुता सिखलाता है। जो अहिंसा के लिये उपयोगी है।

मेरे विचार से हिन्दू धर्म का सौंदर्य समस्त को एक साथ आलिंगन करने में है...दूसरे में जो सारतत्त्व पाए जाते हैं वे सभी हिन्दू धर्म में एक साथ अनवरत वर्तमान हैं। जो इसमें नहीं पाए जाते हैं वे असार एवं अनावश्यक हैं।

—महात्मा गांधी

बौद्ध आचरण शास्त्र

परिचय

1. पिछले लगभग 3000 वर्षों में भगवान् बुद्ध एक महान् आत्मा, महामानव थे। मानवता के उद्यान में वे सर्वश्रेष्ठ पुष्प थे। वे राजघराने में जन्मे एक राजकुमार थे, उन्होंने सब राजसी ठाट-बाट, सुख-ऐश्वर्य को त्याग कर, संन्यासी बनकर वन में प्रस्थान किया। उनका संन्यास किसी कुंठा या आशाभंग के कारण नहीं था। उन्होंने मानवता के विशाल गृह की सेवा हेतु अपना पैतृक गृह त्याग दिया।

2. बुद्ध महान् नैतिक विचारक थे। वे पहले तो नैतिकतावादी थे फिर रहस्यवादी थे। उन्होंने उस समय की रहस्यवादी विचारधारा को आचरणवाद की दिशा दी। बुद्ध कहते थे, 'जब घर जल रहा है तो आग के विषय में व्यर्थ तर्क-वितर्क का कुछ लाभ नहीं। जल्दी से अग्नि पर जल डालना चाहिए। हमारा समाज अब जल रहा है, इस समय नैतिकता की आवश्यकता है ना कि रहस्यवाद पर चर्चाएं।'

3. धर्म और ईश्वर प्रायः नैतिकता के पथ पर बाधा बन सकते हैं। बुद्ध ने इनसे परे हट कर मानव नैतिकता का एक अच्छा क्षेत्र तैयार किया।

4. बुद्ध की रहस्यवादी मान्यताएँ ये हैं—

(i) सब परिवर्तनशील है, स्थाई कुछ भी नहीं।

(ii) ईश्वर के अस्तित्व एवं स्वभाव के विषय में मौन हैं।

(iii) हम सब परिवर्तन की शृंखला के एक भाग हैं।

बुद्ध के दर्शन में परमेश्वर या अमर आत्मा का कोई स्थान नहीं है। बुद्ध ऐसी मान्यताओं को नैतिक उत्थान के लिए जरूरी नहीं मानते हैं।

5. बुद्ध का आचरणवाद बौद्ध मनोविज्ञान पर आधारित है। कोई स्थाई आत्मा नहीं है। व्यक्ति परिवर्तनशील शृंखला का भाग है, इस शृंखला की कड़ियाँ स्मृति से जुड़ी हुई हैं।

6. जीवन की परिभाषा—क्योंकि सभी परिवर्तनशील है, जीवन एक नये, अनदेखे क्षेत्र की यात्रा सी है। सच्चा ज्ञान-पिपासु इस धरती पर अधिक समय तक नहीं रहना चाहता।

7. बुद्ध मानव के उद्धार के प्रतीक हैं। वे विश्व के प्रथम मनुष्यतावादी हैं जो मानव को ईश्वर से पहले रखते हैं। उन्होंने मनुष्य को अमानव शक्तियों से स्वतन्त्र कराया और मानव के गौरव को उच्च स्थान दिया। वे ईश्वर या राक्षस—दोनों में विश्वास नहीं रखते थे। उन्होंने मूर्ति पूजा के स्थान पर उच्च आदर्शों की पूजा का उपदेश दिया।

8. बुद्ध ने चार उच्च आदर्शों की खोज की।

(i) संसार में बहुत दुःख है।
(ii) दुःख का कारण है।
(iii) दुःख से बाहर आने का उपाय है।
(iv) यह उपाय मैं दिखा सकता हूँ।

9. प्रथम आर्य सत्य—हर सुख के अन्त में दुःख होता है, प्रेम का अन्त हानि-द्वेष, जवानी का अन्त बुढ़ापा, जन्म का अन्त मृत्यु और मृत्यु के बाद पीड़ादायी जन्म होते हैं। जन्म, मृत्यु फिर जन्म, कई बार।

10. द्वितीय आर्य सत्य—बुद्ध कारण या निमित्त को सिद्धान्त मानते थे। दुःख का कोई कारण अवश्य होता है। दुःखों की श्रृंखला की 12 कड़ियाँ हैं। दुःख, जन्म-लालसा या इच्छा, ममता (किसी वस्तु के साथ चिपक जाना), प्यास-तृष्णा, इन्द्रियों का ज्ञान, बाह्य पदार्थों से सम्पर्क, इन्द्रियाँ, गर्भ का अनुभव (embryonic-organism), प्राथमिक चेतना, पूर्व जन्म के भाव या धारणा, सत्य के प्रति अज्ञान। दुःख का मुख्य कारण तृष्णा और अविद्या है।

11. अनैतिकता के चार चरण हैं—

अहंकार—स्व या आत्मा के विषय में भ्रान्ति।
काम—दैहिक सुखों की इच्छा।
संशय—नैतिक जीवन मूल्यों पर अविश्वास।
स्पष्ट ज्ञान के अभाव में पाप की ओर प्रवृत्ति।
दुष्चेष्टा—पापसंकल्प।

12. मानव को भ्रमित करने वाले पाँच विकार-(मानस रोग)

(i) काम—Passion (ii) क्रोध—Anger
(iii) लोभ—Greed (iv) मोह—Conceit
(v) अहंकार—Egoism

13. तीसरा आर्य सत्य—दुःखों से निवारण के उपाय हैं। बुद्ध के उपदेशों में दुःखों से निवृत्ति के उपाय बताए गए हैं। सबसे उच्च आदर्श निर्वाण है—जन्म-मरण के बंधन से छुटकारा पाना।

जो मानव जीवन के 10 बन्धन तोड़ देता है, 5 इन्द्रियों को अनुशासित कर सकता है और नैतिक आचरण पर चलता है—वह निर्वाण को प्राप्त करता है।

काम को अनुशासित कर पवित्रता लाभ करता है।

क्रोध को अनुशासित कर सज्जनता लाभ करता है।

लोभ को अनुशासित कर दान में प्रवृत्त होता है।

मोह को अनुशासित कर स्वतंत्रता लाभ करता है।

अहंकार को नियंत्रित कर सत्य को उपलब्ध करता है।

14. निर्वाण के विषय में कुछ भ्रान्तियाँ हैं जो अवश्य मिटा देनी चाहिये।

(i) निर्वाण अकर्मण्यता नहीं है। बुद्ध का जीवन पूर्ण सक्रिय रहा। वे निर्वाण के बाद भी क्रियाशील रहे। निर्वाण साक्षात जीवन मुक्ति ही है।

(ii) निर्वाण अस्तित्व का अन्त नहीं है।

(iii) निर्वाण ज्ञान की प्राप्ति है।

(iv) निर्वाण दुःख-क्लेश का अन्त एवं परम शान्ति पाना है।

15. चौथा आर्य सत्य—बुद्ध कष्ट के निवारण और निर्वाण प्राप्ति के आठ उपाय बताते हैं।

(1) सम्यक् दृष्टि (2) सम्यक् संकल्प (3) सम्यक् वाणी (4) सम्यक् कर्म (5) सम्यक् आजीविका (6) सम्यक् प्रयत्न (7) सम्यक् स्मृति (8) सम्यक् समाधि।

16. भारतीय आनन्दवाद—पश्चिमी आनन्दवाद के अनुसार केवल सुख-ऐश्वर्य ही वांछनीय है, अभीष्ट है—भारतीय आनन्दवादी (बुद्ध) के अनुसार सुख यथार्थ सत्य नहीं है और अप्राप्य है। दुःख ही यथार्थ सत्य है। दुःखों से छुटकारा ही निर्वाण पाना है। इसके विपरीत वेदान्त के अनुसार ईश्वर ही आनन्दस्वरूप है। परम सत्य है। कष्ट और दुःख यथार्थ सत्य नहीं है। परम आनन्द की प्राप्ति ही जीवन का मुख्य लक्ष्य है।

17. नैतिक आदर्श—नैतिक आदर्श सार्वभौमिक भला और चेतन ज्ञानवान सौहार्द ही नैतिक आदर्श हैं।

(i) बुद्ध ने पूरे विश्व के प्रति निष्काम सेवा का उपदेश दिया। जब 'स्व' या अहम् नहीं रहता तो स्वार्थ हो ही नहीं सकता।

(ii) सार्वभौमिक बंधुत्व—हम सब समान कारणों के कारण समान रूप से दुःखी हैं, संतप्त हैं। हम दुःखों के नाटक में समान रूप से अभिनेता हैं। इसलिये हम सभी बंधु और सहयोगी हैं।

(iii) चेतनशील-ज्ञानवान बंधुत्व—हम अज्ञानी अंधे-बंधु नहीं, बल्कि पूर्णतः ज्ञानवान बंधु है। बुद्ध ने ज्ञानशील बंधुत्व का उपदेश दिया था। मानव अपने दुःखों को शुद्ध ज्ञान या बुद्धत्व द्वारा समाप्त कर सकता है।

बुद्ध शब्द का अर्थ ज्ञान या प्रकाशित होना है। बौद्ध धर्म ज्ञान पाने या प्रबुद्ध होने का मार्ग है। इनका आदर्श वाक्य है—

बुद्धं सरणं गच्छामि
धम्मं सरणं गच्छामि
संघं सरणं गच्छामि

18. नैतिक ज्ञान का स्रोत—बुद्ध संसार के श्रेष्ठतम विवेकी विद्वान रहे हैं। उनके अनुसार तर्क नैतिक ज्ञान के लिए सबसे अच्छा स्रोत है। भावना, सहजबुद्धि और अन्धविश्वास का कोई स्थान नहीं है।

19. नैतिक चेतना—बुद्ध नैतिक चेतना को बहुत महत्त्व देते हैं। वे विश्व के प्रथम नैतिक दर्शनशास्त्री थे जिन्होंने मानवता को नैतिकता की दिशा दी।

20. मुख्य नैतिकता—सार्वभौमिक अहिंसा एक मुख्य नैतिकता है। हर जीव को अपने समान अमूल्य समझो।

21. नैतिकता का मापदण्ड—मानवता का गौरव सर्वोपरि है। कोई भी कार्य करते समय स्वयं से पूछें कि इस कार्य से मानवता की प्रतिष्ठा कम तो नहीं हो रही।

22. स्वेच्छा—इच्छाशक्ति मनुष्य का अद्भुत उपहार है। मानव में इच्छा करने की शक्ति है, अतः वह अपने कर्मों और परिणाम के लिये उत्तरदायी भी है। इच्छाशक्ति से मनुष्य स्वयं को 5 विकारों से छुड़ा सकता है।

23. विचारशील नैतिकता—बुद्ध पुरातन ग्रन्थों एवं धार्मिक पुस्तकों-वेदों पर विश्वास नहीं करते थे। वे रूढ़िवादी प्रथाओं को हतोत्साहित करते थे। उन्होंने मानवता को अन्धविश्वासों की निद्रा से जगाया और विचारशील नैतिकता का समर्थन किया।

24. कर्म का सिद्धान्त—बुद्ध कर्म के सिद्धान्त पर विश्वास रखते थे। उनके लिये कर्म आन्तरिक प्रेरणा है न कि बाहरी क्रिया।

25. नैतिक न्याय—नैतिक न्याय का उद्देश्य आन्तरिक होता है ना कि बाह्य क्रिया-कलाप।

26. अच्छा और शुद्ध आचरण—निर्वाण ही सभी मानवों को नैतिकता की ओर प्रेरित करता है। बुद्ध का आचरणवाद सर्वहिताय की ओर ले जाता है। किन्तु जब बुद्ध कहते हैं कि आन्तरिक उद्देश्य अधिक महत्त्वपूर्ण है बाह्य कर्म की तुलना में, तो यह शुद्ध आचरण, पवित्रता का आचरणवाद है। यह मुख्यतया उचित या शुद्ध व्यवहार का ही आचरणवाद है। निर्वाण इसका अन्तिम लक्ष्य है।

27. व्यक्ति विशेष और समाज—निर्वाण व्यक्ति के उत्थान के लिये और सार्वभौमिक बंधुत्व समाज की भलाई के लिए होता है। बुद्ध ने इन दोनों तत्त्वों का अच्छा सामंजस्य किया। उनका आचरणशास्त्र समाज की भलाई पर अधिक महत्त्व देता है।

28. अन्य गुण—बुद्ध योग और ध्यान को अधिक महत्त्व देते हैं जिसके लिये व्रत, शरीर का शुद्धीकरण और इन्द्रियों का शुद्धीकरण आवश्यक है।

29. मध्यम मार्ग—बुद्ध ने आत्म बलिदान या सुख-ऐश्वर्य में लिप्त हो जाना—दोनों को ही बुरा माना था। ये दोनों गलत हैं। आत्मघात मत करो—इन्द्रियों में अधिक बह मत जाओ। मध्यम मार्ग ही ज्ञान दिलाता है—निर्वाण दिलाता है। इच्छाओं को विवेक पूर्ण ढंग से पूरा करना चाहिए।

30. सादा जीवन : उच्च विचार—इसके तीन मुख्य बिन्दु हैं—निर्धनता, शुद्धता और सेवा।

संघ या सामाजिक बंधुत्व प्राप्त करने के लिये सांसारिक विषय छोड़ दें। संघ में धर्म, लिंग या जाति का भेदभाव नहीं रहता।

आलोचना

1. कर्म के सिद्धान्त के अन्तर्गत व्यक्ति की क्या भूमिका है? यदि व्यक्ति ही नहीं तो कर्म का क्या महत्त्व?

2. निर्वाण प्राप्त करने पर आत्म या स्व की सत्ता नहीं रहती। परिवर्तनों की श्रृंखला में ऐसी स्थिति कैसे आ सकती है?

3. निर्वाण को समझना दुष्कर है। यह क्या पूर्ण लुप्त हो जाना है? इस स्थिति में 'स्व' का क्या होता है? यदि यह लुप्त हो जाना ही है तो मुक्ति कैसे प्राप्त होती है?

4. कर्म का सिद्धान्त न्याय को नियन्त्रित करने वाली किसी अन्य शक्ति के बिना स्पष्ट नहीं होता।

5. जब स्व या व्यक्ति विशेष नहीं तो नैतिक उत्तरदायित्व कौन लेगा?

भारतीय नीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त

भारत में नीति शास्त्र के लिये पर्यायवाची शब्द धर्म शास्त्र, आचार शास्त्र, कर्तव्य शास्त्र, नियम शास्त्र, व्यवहार शास्त्र, जीवन कला, व्यवहार दर्शन आदि है।

(2) नीति शब्द का अर्थ—नीति शब्द 'नी', 'नय' धातु से बना है जिसका अर्थ है ले जाना। नीति का अर्थ है वह नियम जो हमें किसी उदिष्ट द्वारा लक्ष्य तक ले जाते हैं। धर्म नीति का अर्थ है वह नियम जिन पर चलने से मनुष्य का ऐहिक और पारलौकिक कल्याण हो। समाज में स्थिरता और संतुलन रहे। विश्व में शांति रहे अर्थात् इन नियमों का पालन करने से व्यक्ति और समाज, दोनों का श्रेय है।

(3) शास्त्र शब्द का अर्थ—किसी विषय के स्वरूप, सम्बन्ध, प्रयोजन, मौलिक आधार और उसके नियमों के विशेष और सर्वाङ्गीण ज्ञान हो अथवा उस ज्ञान वाले ग्रंथ को शास्त्र कहते हैं। नीति शास्त्र को नीति-विज्ञान भी कहते हैं क्योंकि विज्ञान भी विशेष ज्ञान है।

(4) भारतीय नीति शास्त्र के प्रति ऐतिहासिक दृष्टिकोण—वेदकाल से लेकर आज तक वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण, कल्पसूत्र, गृहसूत्र, षड़दर्शन, रामायण, महाभारत, इतिहास, पुराण, सदाचार-नीति, व्यवहार-नीति, संतों के नैतिक उपदेश और आधुनिक भवोदय के नेताओं तक भारतीय नीति शास्त्र का एक-एक सूत्रबद्ध इतिहास प्राप्त होता है। इसमें व्यक्ति और समाज, जगत् और जीवन, कर्म और धर्म के प्रति जो विशेष दृष्टिकोण रहा है उसे भारतीय नीति शास्त्र के मूल सिद्धान्तों के अन्तर्गत गिना जाता है।

(5) भारतीय नीति शास्त्र और आधुनिक पाश्चात्य नीति शास्त्र में तुलना

- भारतीय शास्त्र अत्यन्त प्राचीन है। भारत में वेद काल से नीति और धर्म का उपदेश निरन्तर चला आ रहा है।

- पाश्चात्य नीति शास्त्र केवल आधुनिक काल का विकास है। प्राचीन काल में उसका कोई अस्तित्व ही नहीं मिलता। पिछले 100-150 वर्षों में पश्चिम के लोगों ने नीति शास्त्र का विकास किया है।

- भारतीय नीति शास्त्र उपदेशात्मक है। इसमें ऋषियों, मुनियों, सिद्धों, सुधारकों के जीवन के सिद्धान्तों तथा उनके उपदेशों का संकलन है।
- पाश्चात्य नीति शास्त्र सिद्धों, महात्माओं के उपदेशों का संग्रह नहीं वरन् उपदेश और श्रद्धा से बाहर होकर मनुष्य की सीमित बुद्धि के आधार पर ही मनुष्य के व्यवहार की समस्याओं की तर्कसम्मत व्याख्या है। इसे वे Rational scientific attitude मानते हैं।
- भारतीय नीति शास्त्र अनुभूतियों पर एवं धर्म को जीवन में उतारने पर बल देता है। Indian ethics is based on human practice.
- पाश्चात्य नीति शास्त्र केवल वाणी का विलास एवं बुद्धि का खेल मात्र है। इसलिये पश्चिम में अनेक Arm Chair philosophers हुए हैं। जो आराम कुर्सी में बैठकर दार्शनिक चर्चा करने में ही सबकुछ मानते हैं, चाहे उनकी नीति चर्चा का उसके प्रत्यक्ष जीवन से कोई सम्बन्ध न हो।
- भारत में भगवान् कृष्ण, राम, बुद्ध, महावीर या शंकर ने अपने नीति दर्शन के सिद्धान्तों को अपने प्रत्यक्ष जीवन में उतार कर नीति की शिक्षा दी। केवल उपदेश करके या पुस्तक लिखकर नहीं।
- भारतीय नीति शास्त्र लोक और परलोक, दोनों का विचार करता है।

  नीति शास्त्र की व्याख्या शुक्र नीति में कहा गया है—नीति शास्त्र समस्त जगत् का उपकार कारक तथा मर्यादा पालक है। पुरुषार्थ चतुष्टय का दाता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा गया है कि नीति शास्त्र सत्य, हित और परिणाम में सुख देने वाली बातों की चर्चा करता है।
- पाश्चात्य नीति शास्त्र केवल ऐतिहासिक व्यवहार की व्याख्या करता है।

(6) भारतीय नीति शास्त्र के मुख्यतया दो विभाग हैं—सामान्य नीतिशास्त्र जो मनुष्य मात्र के लिये उपदेश करता है। दूसरा राजनीति शास्त्र जो राज्य करने वाले के लिये है।

सामान्य नीति शास्त्र के विशेष विषय—पुरुषार्थ चतुष्टय, प्रारब्ध और पुरुषार्थ, सामान्य धर्म, वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, नारी धर्म, आपद धर्म, प्रायश्चित्त, मोक्ष साधना आदि-आदि हैं।

(7) धार्मिक और दार्शनिक आधार—संसार की नश्वरता, आत्मा की अमरता, संसार का दुःख चक्र, भोगों में शांति की कमी, ईश्वर में विश्वास आदि-आदि।

(8) भारतीय नीति शास्त्र के मनोवैज्ञानिक आधार—(क) मनुष्य के व्यक्तित्व में आत्मा, चित्त और तीन शरीर (स्थूल, सूक्ष्म, कारण) है।

(ख) मनुष्य के अनुभव की चार अवस्थायें—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, समाधि (तुरीयावस्था)—इनके बिना मनुष्य अपने स्वरूप को नहीं पहचान सकता।

(ग) मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र, फल भोगने में परतंत्र है।

(घ) सत्संगति और साधना से व्यक्तित्व का विकास होता है।

(ड) देह भावना समाप्त होने पर जब आत्मभावना दृढ़ हो जाती है तब निजानंद का अनुभव अधिकाधिक होने लगता है।

(9) भारतीय नीति शास्त्र के सामाजिक आधार—जीव अकेला कर्म करता है तथा अकेला ही कर्मफल भोगता है। इस वचन से कुछ लोग समझते हैं कि भारतीय नीति अधिकांशतः वैयक्तिक है किन्तु कर्म सिद्धांत का यह कठोर नियम है कि प्रत्येक कर्म का कर्ता या भोक्ता व्यक्ति ही हो सकता है।

(10) प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी समाज में जन्म लेता है इसलिए व्यक्ति को समाज के कल्याण का विचार करके व्यवहार करना चाहिए। भारत के मनीषियों ने जाना कि समाज व्यक्ति से बनता है, चेतना व्यक्ति में है, समाज में नहीं, संकल्प-शक्ति व्यक्ति में है, समाज में नहीं, अतः अच्छे व्यक्तियों से ही अच्छे समाज की रचना होगी। A good society is formed only by good man.

(11) वर्णाश्रम धर्म की रचना भारत की सुन्दर सामाजिक रचना है। विदेशियों के निरन्तर आक्रमणों के उपरान्त भी वर्णाश्रम धर्म ने भारतीय समाज की रक्षा की है। सामाजिक जीवन से एक परम्परा का निर्माण होता है। दुनिया के सब देशों में से भारत ही एक ऐसा देश है जो हजारों वर्षों से अपनी परम्परा को अविच्छिन्न रूप से कायम रख सका है। भारतीय नीति ग्रंथों में व्यक्ति समाज के प्रति ऋण को पहचानता है किन्तु समाज को सुधारने से पहले स्वयं अपने को भी सुधारने पर बल दिया है अन्यथा समाज को सुधारा नहीं जा सकता।

भारतीय धर्म-दर्शन का नीति शास्त्र

भारत एक धर्म प्रधान देश है। जहाँ धर्म दर्शन से व्यापक दृष्टि प्राप्त करता है और प्रत्यक्ष नीति में या नैतिक कर्मों में प्रतिफलित होता है। धर्म की मोक्ष साधना दर्शन है और कर्म साधना नीति। धर्म सत्य का दर्शन तत्त्वदर्शन द्वारा करता है और ऋतम् का पालन नीति द्वारा। अतः भारत में धर्म, दर्शन और नीति एक-दूसरे से सम्बद्ध और एक-दूसरे से ओत-प्रोत हैं। ज्ञान मार्गी या ज्ञान योगी धर्म का पालन दर्शन द्वारा करते हैं और कर्म योगी धर्म का पालन नैतिक आचरण द्वारा।

नैतिक जीवन के लिये कुछ धार्मिक विश्वास अनिवार्य हैं। जर्मनी के नीति-द्रष्टा कांट ने नीतिशास्त्र के निम्नलिखित धार्मिक आधार आवश्यक माने हैं—

(1) Freedom of will अर्थात् कर्म में संकल्प की स्वतंत्रता। यदि मनुष्य कर्म करने के लिये स्वतंत्र नहीं होगा तो उसे अच्छे या बुरे कर्मों के लिये उत्तरदायी नहीं माना जा सकता।

(2) आत्मा की अमरता—कांट का कथन है कि यदि मनुष्य अमर न हो तो मरने से पूर्व किये जाने वाले अच्छे-बुरे कर्मों का फल उसे नहीं दिया जा सकता। यह कर्म सिद्धांत का उल्लंघन होगा।

(3) God is the governor of the universe—सृष्टि का नैतिक शासन ईश्वर के हाथ में हुए बिना नीतिशास्त्र या नीति दर्शन चल नहीं सकता।

भारतीय नीति दर्शन के धार्मिक आधार—

(1) आत्मा में विश्वास—चार्वाक के मत को छोड़कर बाकी सभी भारतीय नीतिकार आत्मा को अजर-अमर मानते हैं।

(2) कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन—प्रत्येक जीवात्मा कर्म करने में स्वाधीन है किन्तु कर्मफल निर्धारित करने एवं भोगने में पराधीन है। भगवान् ने अर्जुन को यही कहा—कर्म करने का तुम्हें अधिकार है, फल भोगने का नहीं। अतः भारतीय नीतिकारों ने Freedom of will का स्थान रखा है, किन्तु कर्म के फल को जैसा चाहे बना ले, ऐसी आजादी मनुष्य को नहीं दी। जिस प्रकार अपने

घर के भीतर ताला लगाकर हम से चाबी खो जाने पर स्वयं बंदी हो जाते हैं इसी प्रकार कर्मों का ताला लगाने के लिये हम स्वाधीन हैं किन्तु उसके बाद चाबी हमारे हाथ में नहीं रहती। कर्म के फल का निर्धारण उस लोकोत्तर शक्ति द्वारा होता है जिसे हम कर्माध्यक्ष कहते हैं। कर्माध्यक्ष साक्षी निर्गुणस्य।

(3) भवसागर, भवाटवी भव महाग्नि या भवचक्र—

भारतीय नीतिकारों ने संसार को एक समुद्र या दावानल या जंगल या दुःखचक्र माना है। उसका कारण है जन्म-मरण का चक्र। भगवान् शंकराचार्य ने कहा है—

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।
इह संसारे खलु दुस्तारे कृपयापारे पाहि मुरारे॥

अर्थात् पुनः जन्म लेना, पुनः मरना, पुनः जननी की कोख में सोना यह संसार सागर निश्चय ही बड़ा दुस्तर है अर्थात् इससे तरना बड़ा दुष्कर है इसलिये हे मुरारी! कृपा करके इस संसार सागर से मुझे पार करके मेरी रक्षा करें। जो इस संसार सागर से पार होने की इच्छा है उसे मुमुक्षा कहते हैं। अर्थात् मुक्त होने की इच्छा वाले जीव को मुमुक्षु कहते हैं। यह मुमुक्षा सबसे मूल्यवान धन है। इसलिये परमार्थ या परमधन कहा गया है।

(4) कर्मफल का नियम और उससे छुटकारा—सभी प्राणियों को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। संसार में रहते हुए कर्म-फल से छुटने का कोई मार्ग नहीं—

कर्म प्रधान बिस्व करि राखा
जो जस करइ तस फल, चाखा।
कर्म की गति टारे नहीं टरे।

कर्मफल का चक्र ही पुनर्जन्म बन जाता है और पुनर्जन्म का चक्र ही दुःख चक्र बन जाता है। इससे मुक्ति का एकमात्र उपाय मोक्ष साधना है। पहले मनुष्य अच्छे कर्मों को करे, बुरे कर्मों को त्याग देवे, फिर अच्छे कर्मों को एवं उसके फल को भी भगवान् को समर्पित कर दे।

सूत्र Do good for the sake of good, ईश्वर को समर्पित करने के लिये अच्छे कर्म करो। Good for God.

जब कोई आदमी किसी से अच्छे कर्म की आशा रखता है और कहता है कि खुदा के वास्ते ऐसा मत करो। अर्थात् बुरा कर्म मत करो। क्योंकि सब कर्म अन्त में ईश्वर को समर्पित करना है। इसलिये अच्छे कर्म करो, निष्काम कर्मयोग, कर्म करते हुए कर्मों के चक्र से छुटने का राजमार्ग है।

ईश्वर की सत्ता

भारतीय नीति शास्त्र ईश्वर की सत्ता पर आधारित है। ईश्वर ही कर्मों का फल देता है और वही अपनी कृपा से कर्म चक्र से मुक्ति भी प्रदान करता है।

परलोक और लोक-लोकान्तर

हमारी पृथ्वी तक मर्त्यलोक है। इसके अतिरिक्त इस ब्रह्माण्ड में अनेक और लोक हैं। मनुष्य संसार से मरकर अपने अच्छे या बुरे कर्मों के अनुसार सुखमय या दुःखमय लोकों में जाता है।

मनुष्य ही कर्म योनि है अन्य सब योनियाँ भोग योनियाँ हैं। देवता लोग स्वर्ग में सुख भोग रहे हैं। वे कोई कर्म की कमाई नहीं कर सकते। इसी प्रकार पापी लोग नरक में दुःख भोग रहे हैं। वे भी कर्म नहीं कमा सकते। पशु-पक्षी, कीट योनि सभी भोग योनि हैं। केवल मनुष्य पिछला कर्म भोगते हुए नया कर्म कमाने के योग्य है इसलिये मनुष्य योनि को कर्म योनि कहा गया है। इसलिए कहा है—

सबते दुर्लभ मनुज शरीरा, बड़े भाग मानुष तन पावा।
मानुष तन पावा सुर दुर्लभ सब ग्रंथन गावा॥

(8) वेदों का महत्त्व और प्रामाणिकता—भारत के सभी आस्तिक दर्शन एवं नीतिशास्त्र श्रुति को अंतिम प्रमाण मानते हैं। बौद्ध और जैन नीति शास्त्र वेद की प्रामाणिकता में चाहे विश्वास न रखते हों पर उनका अहिंसा का नीति उपदेश तथा नैतिक आचरण पर बल सर्वथा वेद सम्मत है।

(9) चारों युगों में विश्वास—सभी भारतीय नीतिकारों का धार्मिक विश्वास है कि आज का मानव नैतिक उन्नति नहीं, नैतिक अवनति कर रहा है क्योंकि यह युग कलियुग है। सतयुग में धर्म के चार चरण थे। त्रेता में तीन, द्वापर में दो, कलियुग में केवल एक चरण बचा है।

पश्चिम के लोग आधुनिक युग को उन्नति का युग समझते हैं किन्तु भारत का विश्वास है कि सत्यवादी हरिश्चन्द्र और रामचन्द्र के काल की अपेक्षा हम आज बहुत अधिक पतित हो रहे हैं।

प्राचीन काल के महत्त्व में विश्वास

भारतीय नीतिकारों का विश्वास है कि मनुष्य उन दिनों अधिक सदाचारी एवं तपस्वी होते थे। वे देवताओं के निकट रहते थे। इसलिये उनको नीति का ज्ञान हस्तामलक था।

ये भारतीय नीतिशास्त्र के कुछ धार्मिक विश्वास हैं।

भारतीय नीति शास्त्र के दार्शनिक आधार

भारत में धर्म और दर्शन में भेद करना तनिक कठिन काम है। धर्म श्रद्धा के मार्ग से जिस सत्य की खोज करता है दर्शन बुद्धि-विचार, तर्क और युक्ति द्वारा उसी सत्य को खोजता है। भारत में जितनी दार्शनिक गवेषणा हुई है उतनी संसार के किसी धर्म में नहीं हुई। इसलिए हिन्दू धर्म सबसे अधिक तर्क-सम्मत धर्म है। नीति-शास्त्र के धार्मिक आधार और दार्शनिक आधार इसीलिए बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। क्योंकि धर्म स्वयं दर्शन के युक्तिवाद की कसौटी पर कसा हुआ है। भारतीय नीति शास्त्र के कुछ प्रमुख दार्शनिक आधार निम्नलिखित हैं—

1. आत्मा की अमरता

2. पुनर्जन्म का सिद्धान्त—जब तक आत्मा अमरपद को नहीं पा लेता तब तक जीव नये-नये शरीरों में जन्म लेता है।

3. कर्मफल सिद्धान्त—मनुष्य को अपने किए हुए अच्छे-बुरे कर्मों का फल अवश्य मिलता है। **अवश्मेव लभते फलं कृतम् कर्म शुभाशुभम्।**

4. लोक-लोकान्तर का सिद्धान्त—जीवों के अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार अनेक योनियाँ हैं और अनेक लोक हैं जहाँ वह अच्छे या बुरे कर्मों का सुख या दु:ख भोगने के लिये जन्म ग्रहण करते हैं।

5. जन्म-मरण का दु:ख चक्र—संसार चक्र में (जन्म-मरण चक्र में) कभी स्थायी सुख-शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती है।

6. सांसारिक भोग—भोग-विलास से स्थायी सुख-शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

7. दु:खों से निवृत्ति का उपाय मोक्ष—तृष्णा से मुक्ति ही संसार एवं संसार की चिन्ताओं से मुक्ति है।

8. ज्ञान का महत्त्व—मोक्ष में जितने साधन हैं ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, ध्यानयोग इत्यादि उन सब में ज्ञान का महत्त्व सर्वोपरि है। ज्ञान के क्रमानुसार निम्नलिखित दर्जे हैं—

(i) इन्द्रिय ज्ञान : यह ज्ञान बहुत सीमित और संकुचित होता है।

(ii) मानसिक ज्ञान : यह अधिकांश मन की कल्पना पर आधारित होता है। जिस प्रकार एक कवि या कलाकार अपने मन में कल्पना करके उसका अंकन करते हैं।

(iii) बौद्धिक ज्ञान : बुद्धि से मनुष्य तर्क-वितर्क करता है और दर्शन की गुत्थियों को विचार से सुलझाना चाहता है किन्तु बुद्धि की पहुँच भी सीमित ही है।

(iv) प्रज्ञा का ज्ञान : बुद्धि से बढ़ कर ज्ञान का साधन प्रज्ञा है। प्रज्ञा संयम, ध्यान, धारणा और समाधि के अभ्यास से उदय होती है। उसकी पहुंच बुद्धि से कहीं अधिक होती है।

(v) ऋतम्भरा प्रज्ञा : यह सत्य और ऋत के ज्ञान से परिपूर्ण होती है। इसलिए वह सत्य और ऋत का दर्शन सीधे ही कर लेती है। गायत्री मंत्र में इस के लिये प्रार्थना की गई है। वैदिक ऋषियों को ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त थी।

(vi) दार्शनिक आधार का लक्ष्य बिन्दु है मोक्ष : मोक्ष का आभास इसी जीवन में हो सकता है। जब मनुष्य के हृदय की वासनाएँ शेष हो जाती हैं और मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सर पर विजय प्राप्त कर लेता है, जब वह राग और द्वेष से ऊपर उठ जाता है, तब वह संसार में रहते हुए भी मोक्ष का आनन्द लेने लगता है। इसे जीवन्मुक्त अवस्था कहते हैं। मरण के बाद मिलने वाली मुक्ति परामुक्ति कहलाती है।

(vii) ईश्वर की सत्ता और महत्ता : भारतीय नीतिशास्त्र ईश्वर की सत्ता और महत्ता को स्वीकार करता है। बिना ईश्वर के न कर्म सिद्धान्त चलेगा और न नीति सिद्धान्त—तब अनैतिक अराजकता ही रहेगी।

(viii) मानव के सर्वांगीण जीवन के मूल्यों में तारतम्य : भारतीय नीतिशास्त्र व्यवहार और परमार्थ में, प्रवृत्ति और निवृत्ति में, इहलोक और परलोक में तारतम्य और समन्वय मानता है। इहलोक में उन्नति प्रारम्भिक आदर्श है और परलोक में शान्ति अन्तिम आदर्श। इसलिए काम और अर्थ, धर्म और मोक्ष के लिए होने चाहिये।

(ix) योगियों, संतों और सिद्धों के आन्तरिक अनुभव का महत्त्व : भारतीय नीतिशास्त्र सिद्ध पुरुषों के अनुभवों को विशेष महत्त्व देता है। उनका अनुभव हमारे लिए मार्गदर्शक ज्योति बन जाता है।

(x) गुरु का महत्त्व : भारतीय नीतिशास्त्र में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। भारत में गुरु आचार्य कहलाते थे जिसका अर्थ है कि वे स्वयं आचार, सदाचार, शिष्टाचार के जीवन्त आदर्श होते हैं। भारत में स्वयं आचार का पालन किये बिना कोई किसी दूसरे को आचार सिखाने का अधिकार नहीं रखता। इसलिए नीतिशास्त्र के वास्तविक द्रष्टा भारत के महान् गुरुजन थे जो अपनी शिष्य-परम्परा में नीतिशास्त्र के महान् आदर्शों को साकार करने में ही अपने जीवन को धन्य मानते थे। मानवता उस ऋषि परम्परा, सन्त परम्परा अथवा गुरु की चिरकृतज्ञ रहेगी।

हिन्दू एवं बौद्ध धर्म में समानताएँ

हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म का प्रादुर्भाव भारत में हुआ और उनमें काफी समानताएँ हैं। बुद्ध हिन्दू के रूप में पैदा हुए, हिन्दुओं के समान ही परिव्राजक संन्यासी बने, हिन्दू धर्मशास्त्रियों का अनुगमन किया और अन्त में अपने मोक्ष के मार्ग पर अकेले चलकर निर्वाण प्राप्त किया। वर्तमान में श्रीलंका में जब हिन्दू और बौद्ध एक-दूसरे के साथ व्यवहार करते हैं तो उनमें काफी समानताएँ नजर आती हैं लेकिन दोनों धर्मों के ऊपर दृष्टिपात करने पर दोनों धर्मों में कुछ मूल भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं।

कर्म का सिद्धान्त, जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्यों से अपने भाग्य का निर्माण करता है; पुनर्जन्म का सिद्धान्त तथा अनगिनत जन्मों में विश्वास तथा मोक्ष की प्राप्ति, जिसमें व्यक्ति जन्म-मृत्यु के चक्कर से छुटकारा प्राप्त कर लेता है—सभी ऐसी अवधारणाएँ हैं जिनमें हिन्दू और बौद्ध समान रूप से विश्वास करते हैं, यद्यपि उनका निर्वचन भिन्न हो सकता है।

बौद्ध इस बात पर बल देते हैं कि हिन्दू तथा अन्य सभी ईश्वरवादी धर्मों से वे दो मूल अवधारणाओं के संदर्भ में भिन्न मत रखते हैं। बौद्ध ईश्वर में विश्वास नहीं करते। जो अपनी कृपा से अपने भक्तों को मोक्ष अथवा मुक्ति प्रदान कर देता है। यद्यपि बौद्ध इस एक से अधिक ईश्वरों में विश्वास करते हैं तथा मानते हैं कि पादार्थिक लाभ दे सकते हैं। बौद्ध अनात्मा के सिद्धान्त को मानते हैं तथा आत्मा की शाश्वतता में विश्वास नहीं करते।

आत्मा और अनीश्वरवाद के सिद्धान्त हिन्दू धर्म के सभी दर्शनों से मूलरूप में भिन्न हैं लेकिन गहरे तुलनात्मक अध्ययन से दोनों धर्मों के बारे में भिन्न सिद्धान्तों के बावजूद कुछ अंदरूनी समानताएँ देखने को मिलती हैं।

हिन्दू धर्म में कई तरह की दर्शन-धाराएँ हैं जिन्हें हम आत्मा से परमात्मा के संबंधों के आधार पर तीन मुख्य भागों में बाँट सकते हैं—द्वैत अथवा द्वन्द्ववाद, विशिष्टाद्वैत तथा अद्वैत।

बौद्ध धर्म अद्वैत अथवा वास्तविकता के प्रति अपने दृष्टिकोण में अद्वैत के समान है, यद्यपि कुछेक विद्वानों के सिद्धान्त विरोधाभासी दिख सकते हैं। अद्वैत

तथा वेदान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में आत्मा अजर और अमर होती है, लेकिन इसके सभी आवरण अस्थायी और नष्टमान होते हैं। सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् तथा अदृश्य वस्तुओं के पीछे आत्यन्तिक सत्य ब्रह्म है, जिसे बौद्धिक तौर पर नापा नहीं जा सकता तथा वह बुद्धि की पकड़ से परे की वस्तु है। वेदान्त के अनुसार मुक्ति अथवा मोक्ष इस तथ्य का अहसास मात्र है कि आत्मा परमात्मा से भिन्न अथवा अलग नहीं है। मैं ही ब्रह्म हूँ। **अहम् ब्रह्मास्मि**। यह दृष्टि-भ्रम कि आत्मा, परमात्मा अथवा ब्रह्म से भिन्न अथवा अलग है, अज्ञानता, मानवीय सीमाओं और बन्धनों के कारण से हुआ है।

बौद्ध धर्म का विश्वास है कि यह मानना कि कोई भिन्न व्यक्ति अथवा आत्मा है, हमारे अहंकार तथा अस्थाई पादार्थिक वस्तुओं के प्रति लगाव तथा इच्छा को जन्म देता है जिससे बन्धन और कष्टों का जन्म होता है। इस दृश्य जगत् की नश्वरता का अहसास, जिसमें स्थाई आत्मा का विचार भी शामिल है, को अष्टांग मार्ग के अनुपालन से प्राप्त किया जा सकता है और यही मुक्ति अथवा निर्वाण है। यद्यपि विचारों और अवधारणाओं में विरोधाभास नजर आता है, लेकिन जहाँ तक अन्तिम लक्ष्य अथवा सत्य का प्रश्न है, बौद्ध और अद्वैत वेदान्त दर्शन—दोनों में पर्याप्त समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। दोनों का उद्देश्य व्यक्ति के अलग-थलग व्यक्तित्व के सीमित भाव की सीमाओं को लांघना है जिससे इच्छाओं और दुःखों के कारणों को ही समाप्त किया जा सके।

बौद्ध धर्म में स्थाई स्वत्व को नकार कर सीमित भावनाओं की परिस्थितियों को लांघा जा सकता है। वेदान्त में यद्यपि स्थाई आत्मा के भाव को स्वीकार किया जाता है, लेकिन इसे परमात्मा अथवा ब्रह्म का ही हिस्सा माना जाता है तथा भिन्नता का भ्रम ही अज्ञान और बंधन का कारण कहा जाता है।

श्रीलंका में बौद्ध धर्म का पालन करने वाले ज्यादातर विद्वान्, जिन्होंने वेदान्त का गहन अध्ययन नहीं किया है, वे परब्रह्म अर्थात् अन्तिम अनिर्वचनीय वास्तविकता तथा ब्रह्म अर्थात् प्रकृति बनाने वाले परमात्मा में बहुत भ्रान्ति पैदा कर देते हैं। ब्रह्म अकल्पनीय तथा अनुकूलित मस्तिष्क की समझ से परे की वस्तु है। इसका केवल वर्णन किया जा सकता है, अथवा नकारात्मक रूप से संकेत भर किया जा सकता है। 'यह नहीं—यह नहीं' अथवा 'नेति-नेतिः।' निर्वाण की स्थिति किसी भी तरह से वर्णन अथवा कल्पना से परे की वस्तु है। भगवान् बुद्ध ने भी कहा है कि यदि अजन्मा, अनुकूलित, अनिर्मित तथा अमिश्रित नहीं है तो जन्मा, अनुकूलित, निर्मित तथा मिश्रित भी नहीं हो सकता। यह वर्णन बिल्कुल ब्रह्म के वर्णन के समान है। यदि किसी वस्तु की अनुकूलित मस्तिष्क द्वारा कल्पना नहीं की जा सकती और उसका वर्णन किया जाए तो उसमें हमेशा समानताएँ नहीं हो सकतीं।

भौतिकी में भी भौतिक विज्ञानी पदार्थ की मूल प्रकृति का स्पष्ट रूप से तथा तार्किक रूप से वर्णन करने में असफल रहे हैं। इसे केवल विरोधाभासी रूप में ही अर्थात् कण तथा तरंग—दोनों रूप में वर्णित किया जा सकता है।

यह अपरिमेय, जो सभी अवधारणाओं और शब्दों से परे है, उसे पर्याप्त रूप से न तो नकारात्मक और न ही सकारात्मक रूप में वर्णित किया जा सकता है। इस अनुकूलित, अमिश्रित तथा अपरिमेय को समझने के लिए व्यक्ति को सभी शब्दों और अवधारणाओं की सीमाओं को लांघना होता है। यह वस्तुनिष्ठ समझ नहीं हो सकती बल्कि उसे केवल आत्मपरक अथवा स्वानुभूतिमूलक रूप में ही समझा जा सकता है। विषय तथा वस्तु—दोनों अद्वन्द्व की स्थिति में आ जाते हैं। जिन्होंने इसे महसूस कर लिया है, वे बुद्ध की तरह केवल मौन में ही अभिव्यक्त कर सकते हैं। जो इसके बारे में बात करते हैं, वे इसे जानते नहीं और जो इसे जानते हैं वे इसके बारे में बात नहीं करते। इसलिए कोई भी वर्णन सकारात्मक अथवा नकारात्मक, यदि उसे बहुत गम्भीर अर्थ में लिया जाए, केवल भ्रान्तियों अथवा विरोधाभासों को ही जन्म देता है, जिससे निरपेक्ष वास्तविकता की समझ सीमित ही होती है। अतः इस तरह के वर्णन को वर्णन से परे की वस्तु के प्रति संकेतमात्र ही माना जाना चाहिए। इस समझ के प्रति खुलेपन हेतु व्यक्ति का सभी विचार और पूर्व-अवधारणाओं का त्याग आवश्यक है। विचार और अवधारणाएँ सूक्ष्म पादार्थिक होती हैं, जो परिमेय पादार्थिक स्तर से मिलती हैं। अपरिमेय और लंघनीय को पादार्थिक परिमापक मष्तिक द्वारा जानना अथवा समझना कदापि संभव नहीं।

ईश्वरवादी धर्मों में जो आत्मा, परमात्मा अथवा ईश्वर और देवत्व का प्रतिपादन करते हैं, परमात्मा के सम्पूर्णत्व से आत्मा के पृथक्त्व को; परमात्मा के प्रति भक्तिभाव से सम्पूर्ण समर्पण द्वारा ही महसूस और प्राप्त किया जा सकता है। सीमित इच्छाओं और भयों पर नियंत्रण प्राप्त करने तथा अनुकूलित अन्तरात्मा से ऊपर उठने के लिए ईसा मसीह का विहित कथन था, 'हे ईश्वर, तेरी इच्छा पूर्ण हो।' बौद्ध धर्म में भी हम समर्पण के पथ को पाते हैं जहाँ सभी बौद्धधर्मी बुद्ध, धम्म अथवा संघ के प्रति अथवा उच्चतर और सम्पूर्ण के प्रति बिना किसी बौद्धिक जाँच के, अपने-आपको समर्पित कर देते हैं, जिससे अहम् पर विजय प्राप्त की जा सके।

यदि निर्वाण की तुलना हम वेदान्त के निर्गुण ब्रह्म से करें तो धम्म अथवा धर्म की तुलना सगुण ब्रह्म अथवा गुणयुक्त ईश्वर से की जा सकती है। ये अर्थ में समान नहीं हैं लेकिन समान अवधारणाएँ हैं, जो शब्दों से परे किसी वस्तु की ओर इंगित करती हैं।

वेदान्त और बौद्ध धर्म—दोनों ही ज्ञानमार्ग के अनुयायी हैं, जो प्राचीन काल में अल्पसंख्यक वर्ग के लिए उपयोगी था। लेकिन यह अल्पसंख्यक वर्ग आध्यात्मिक अर्थ में कुलीन था जिसने आम लोगों का अपने उपदेशों और कार्य से

पथ प्रशस्त किया था। यह कहा जा सकता है कि एशिया में बौद्ध धर्म के करोड़ों अनुयायी हैं। लेकिन वास्तव में जिस धर्म का पालन करोड़ों लोग कर रहे हैं वह भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धर्म के मूल तत्त्वों और शुद्ध शिक्षाओं पर आधारित धर्म नहीं है, बल्कि वह उसका साधारणीकृत स्वरूप है जो बहुत हद तक हिन्दू धर्म के समान है, जिसका पालन करोड़ों हिन्दू करते हैं; यद्यपि कुछ अल्प संख्या में बौद्ध धर्म का पालन करने वाले साधु बौद्ध धर्म के मूल तत्त्वों और उपदेशों का गंभीरता से पालन करने का प्रयास करते हैं।

बौद्ध धर्म भारत में पृथक् धर्म नहीं रहा है। बुद्ध हिन्दू के रूप में पैदा हुए; उन्होंने हिन्दू गुरुओं के उपदेशों का अनुपालन किया और अन्त में वे अकेले जंगलों में चले गए जहाँ उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई। हिन्दू धर्म के अनुसार भी अन्त में व्यक्ति को अकेला ही जाना होता है, और उच्चतम पद अर्थात् मोक्ष प्राप्त करना होता है। यह कहा जाता है कि यदि व्यक्ति को नदी के दूसरे तट पर जाना है तो उसे जिस नाव से नदी पार करनी है, उससे चिपकना नहीं होता, उसे छोड़ना होता है। गुरु और आचार्य केवल पथ की ओर संकेत कर सकते हैं, लेकिन ज्ञान-प्राप्ति, मोक्ष अथवा निर्वाण के लिए उसे अपने मार्ग पर अकेले ही यात्रा करनी होती है।

यद्यपि बौद्ध धर्म भारत में पृथक् धर्म के रूप में बचा नहीं रह सका, लेकिन बुद्ध के मूल उपदेश और शिक्षाएँ उपनिषदों की उच्चतम उपदेश और शिक्षाओं के समान हैं और महात्मा बुद्ध के विशिष्ट योगदान को हिन्दू धर्म ने अपने-आपमें आत्मसात् कर लिया है, यहाँ तक कि कुछ हिन्दुओं द्वारा बुद्ध को विष्णु का दसवाँ अवतार तक कहा जाता है।

भारत में बौद्ध धर्म क्यों एक पृथक् धर्म के रूप में बचा नहीं रह सका, इसका कारण सम्भवतः यह है कि बुद्ध ने जाति-व्यवस्था और मन्दिरों में कर्मकाण्ड की ज्यादतियों का विरोध और खण्डन किया जो उस समय के धर्मप्रभुओं और ब्राह्मणों को स्वीकार्य नहीं था। उसने उनके विशेषाधिकारों को हटा दिया और प्रत्येक को समान रूप से व्यवहार दिया। महात्मा बुद्ध की यह शिक्षा उनके समय से बहुत आगे थी। हाल तक के समय में विश्व के प्रत्येक सभ्य समाज में (आदिम सभ्यताओं को छोड़कर) किसी-न-किसी तरह की जाति अथवा वर्ग-व्यवस्था थी जिसमें प्रत्येक वर्ग का अपना उच्च अथवा निम्न स्थान था और उच्च वर्गों अथवा जातियों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे। दासप्रथा को बड़े-बड़े दार्शनिकों यथा—संत ऑगस्टाइन, सन्त थॉमस एक्विनस ने उचित ठहराया था। इस तरह के श्रम-विभाजन के अभाव में सभ्यता आगे नहीं बढ़ सकती थी, क्योंकि बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक रुचियों के विकास के लिए विशेषज्ञता विशेषाधिकार एक कुलीन वर्ग के लिए आवश्यक माने गए थे। आज तकनीक का बहुत विकास

हो गया है, जिसकी वजह से कठिन, गन्दा अथवा भारी कार्य मशीनों द्वारा किया जा सकता है तथा प्रत्येक व्यक्ति को उसके खाली समय में अच्छे उद्देश्यों हेतु मुक्त किया जा सकता है। यहाँ तक कि बौद्ध धर्म का पालन करने वाले देशों तक में जाति-प्रथा जैसी व्यवस्था बची रही जिसमें कुछ विशेषाधिकार प्राप्त कुलीन वर्ग अथवा विशिष्ट व्यक्ति हुआ करते थे।

सामान्य जनसमुदाय जो ज्यादा शिक्षित अथवा सुसंस्कृत नहीं होते थे, ज्ञान-मार्ग का अनुपालन नहीं कर सकते थे और इसीलिए उन्हें अपने मन की शान्ति तथा आध्यात्मिक विकास के लिए कुछ कर्मकाण्ड तथा भक्तिमार्गी उपायों की आवश्यकता होती थी। इसलिए महात्मा बुद्ध के खण्डन तथा भर्त्सना के बावजूद भी बौद्ध समाज में कुछ तरह के कर्मकाण्ड, यथा—समर्पण भाव के साथ भगवान् बुद्ध की प्रतिमा की अर्चना करते समय पुष्पार्पण इत्यादि प्रचलित रहे। संघों के नियम एवं विनियम, एक विशेष तरह की पोशाक को पहनना, जिसे 'सिल' कहा जाता है, 'पिरिथ' का जप इत्यादि सभी इसी तरह के कर्मकाण्ड कहे जा सकते हैं, यद्यपि हिन्दू मन्दिरों में पाए जाने वाले विस्तृत कर्मकाण्ड यहाँ नहीं होते। वे लोग जो अपने शरीर और अपने मन पर नियन्त्रण नहीं रख सकते, उन्हें अपने मन को शान्त करने और शान्ति प्रदान करने के लिए पूजा-पद्धति अथवा समर्पण जैसे कुछ बाहरी उपायों की आवश्यकता होती है।

हिन्दू धर्म में बहुत से महान् सन्तों ने अपनी आध्यात्मिक साधना गहन भक्ति के साथ मूर्ति की पूजा से प्रारम्भ की है। हाल के ही वर्षों में स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने माँ काली की मूर्ति की आराधना की। उनकी माँ काली की मूर्ति आत्यन्तिक वास्तविकता नहीं थी लेकिन उनकी आराधना ने उस मूर्ति की दृष्टि को छिन्न-भिन्न कर उन्हें उससे परे जाने में सहायता की। श्री रमण महर्षि ने अरुणाचल की आराधना की लेकिन जब उनसे यह प्रश्न पूछा गया कि क्या शिव और कैलास; विष्णु और वैकुण्ठ सत्य और विद्यमान हैं? उन्होंने उत्तर दिया, 'वे उतने ही वास्तविक हैं जितने मैं और आप हैं, लेकिन जिस तरह मैं और आप माया के अन्तर्गत हैं, वे भी माया के अन्तर्गत हैं।' उनके द्वारा उच्चतम सत्य की प्राप्ति के बावजूद भी, उनका यह भाव था कि बहुत-से लोगों के लिए समर्पण का पथ आसान और शीघ्रगामी हो सकता है।

विज्ञान और तकनीक के विकास के साथ, मानव की शारीरिक श्रम से मुक्ति, सभी तरह के भेद, विभेदों और अत्याचारों पर विजय, स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व और मानवीय गरिमा के आदर्शों का प्रचार तथा शिक्षा तथा संस्कृति के व्यापक प्रसार से मानव समाज एक ऐसे चरण में पहुँच रहा है, जहाँ वेदान्त और बौद्ध धर्म का ज्ञानमार्ग बहुत-से लोगों के लिए उपयोगी और व्यवहार्य होगा।

कर्मकाण्ड समेत बहुत-सी धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रथाओं का संरक्षण होना चाहिए और यह बिना मतभेद अथवा झगड़ों के होना चाहिए जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रच्छन्न प्रकृति और स्वभाव के अनुसार अपनी आध्यात्मिक प्रथाओं और रिवाजों का अनुपालन कर सके।

हाल ही के वर्षों में विद्यमान रहे जब एक वैदान्तिक सन्त से यह पूछा गया कि बहुत सारी विरोधाभासी शिक्षाओं के बीच में किस पथ का अनुसरण करना चाहिए तो उन्होंने कहा कि सभी शिक्षाएँ विश्वसनीय हैं लेकिन कोई भी शिक्षा सत्य नहीं है, क्योंकि सत्य की प्राप्ति तो स्वयं द्वारा ही की जा सकती है। सत्य की प्राप्ति के लिए किसी भी पथ का चयन किया जा सकता है जो साधक को अच्छा लगे, सत्य की प्राप्ति पथ के चयन पर निर्भर नहीं करती बल्कि व्यक्ति की उत्सुकता और अध्यवसाय पर निर्भर करती है।

किसी भी पथ का यदि गम्भीरता तथा उत्सुकता, गम्भीर अध्यवसाय और समर्पण के साथ अनुगमन किया जाए तो उससे परमात्मा अथवा आत्यन्तिक सत्य तक पहुँचा जा सकता है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस का मूल संदेश था, जिन्होंने अनेक उपायों का अनुसरण किया और प्रत्येक बार वे उसी आनन्दमय मंजिल पर पहुँचे। हमें यह महसूस करना चाहिए कि बौद्धिक सिद्धान्त एवं दर्शन मूलतत्त्व का वर्णन नहीं करते। सत्य की प्राप्ति स्वत्व के द्वारा ही संभव है। इस आभास से पूर्व इस अन्तराल में हमें बिना किसी भेदभाव के सार्वभौमिक अनुकम्पा हेतु सभी लोगों को संगठित करने के लिए सभी धर्मों का उपयोग करना चाहिए। और यह हम बौद्धिक रूप में सभी धर्मों में मूल तत्त्वों की समानता दिखाकर कर सकते हैं, जिससे कि भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बियों में झगड़े और असामंजस्य की स्थिति पैदा न हो बल्कि सभी लोग सामंजस्य, शान्ति तथा सहयोग हेतु संगठित हो सकें।

हिन्दू धर्म कभी भी सनातन न बन पाता, यदि वह निरन्तर वर्धमान और वितरणशील बनकर, अनुभूतियों के नव-नवीन क्षेत्रों को अपने अन्दर सम्मिलित करता न रहता। प्रत्येक नवागत कल्पना को अपने अन्दर संकलित कर अपने को तदनुरूप समायोजित करने की सामर्थ्य हिन्दू धर्म का एक विशेष लक्षण है, इसलिये हिन्दू धर्म को हम एकमात्र अमर धर्म के रूप में पहचानते हैं। संसार के ज्ञात किसी अन्य धर्म के अन्दर इस प्रकार का सामर्थ्य उस मात्रा में नहीं जितना हिन्दू धर्म में है। अतः हिन्दू धर्म विश्वधर्म के वृक्ष का वह तना है जो संसार के अन्य अल्पजीवी, धर्म-मतों को बहिर्वर्ती शाखाओं के रूप में वहन करता है।

—भगिनी निवेदिता

जड़वाद

जो विचारधारा यह मानती है कि विश्व की अन्तिम सचाई जड़-पदार्थ ही है और उसके अतिरिक्त कुछ नहीं। उसे पदार्थवाद अथवा Materialism कहते हैं।

पदार्थ की परिभाषा—जो वस्तुएं जगह घेरती हैं और वजन रखती हैं, उन्हें पदार्थ कहा जाता है।

प्राचीन यूनानी विचारक—(क) Thales का मत है कि सृष्टि का मूल तत्त्व जल है।

(ख) Anximender का मत है कि मूल तत्त्व जड़ तो है, किन्तु उसे वाणी से कथन नहीं किया जा सकता।

(ग) Aneximenes का मत है कि सृष्टि का मूल तत्त्व वायु ही है।

(घ) Heraclitus का विचार है कि सृष्टि का मूल तत्त्व अग्नि है।

(ङ) Empedocles के अनुसार सृष्टि में चार मूल तत्त्व हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु।

(च) भारत के सांख्य दर्शन में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांच तत्त्वों को जड़ प्रकृति का अंग माना गया है। किन्तु प्रकृति से परे चेतन आत्मा को भी सांख्य दर्शन मानता है। जिसे पदार्थवाद नहीं मानता है।

(छ) यूनान के Leucippus और Democritus ने पश्चिम में पहली बार यह कहा कि विश्व जड़-पदार्थ के परमाणुओं से बना है। भारत में महर्षि कणाद ने इससे पहले ही परमाणुवाद का विचार प्रस्तुत किया था।

(ज) प्लेटो तथा एरिस्टाटल पदार्थवाद को नहीं मानते। प्लेटो तो बुद्धिवादी या चेतनवादी था। अरस्तू विश्व की अन्तिम सचाई को विकास शक्ति मानता है, जो जड़ द्रव्य जैसी है।

आधुनिक विचारक—(क) आधुनिक यूरोप में फ्रांस के दार्शनिक देकार्ते ने जड़ और चेतन दोनों को सत् माना है।

(ख) England के Locke, Barkely, Hume भी जड़वादी हुए।

(ग) इटली के चार्ल्स डार्विन भौतिक विकासवादी विचारक हैं जिनका मत है कि जड़ पदार्थ के विकास से ही जीवों का विकास हुआ है।

(घ) कार्लमार्क्स कम्यूनिज्म का जन्मदाता भी जड़वादी है। उसके सिद्धान्त का नाम द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है।

जड़वाद के नाम—जड़वाद चूंकि ईश्वर को नहीं मानता इसलिए इसे नास्तिकवाद भी कहा जाता है। क्योंकि यह प्रकृति को सत् मानता है, इसलिए इसे Naturalism भी कहते हैं। क्योंकि यह जड़ वस्तुओं की सत्ता मानता है इसलिए इसे वस्तुवाद कहते हैं।

जड़वाद की परिभाषाएं—(1) सृष्टि का अन्तिम तत्त्व जड़ है।

(2) जड़ तत्त्व अथवा पदार्थ (Matter) के रूप में जड़ वस्तुएं ही सत् नहीं है। जैसे—मेज, कुर्सी, टेबल आदि। विश्व की तमाम वस्तुओं में सहायक वह सूक्ष्म पदार्थ सत् है जिसके सूक्ष्म परमाणु सब वस्तुओं में व्याप्त हैं। वस्तुएं अनेक हैं किन्तु उनकी रचना करने वाले परमाणु सबमें एकसमान हैं।

(3) जड़ पदार्थ की मात्रा सृष्टि में सदा समान रहती है। न उसकी उत्पत्ति हो सकती है, न नाश। जड़वादियों के मत में जड़ द्रव्य अनादि, नित्य और अविनाशी है। अधिक से अधिक पदार्थ का रूप परिवर्तित होता है। कभी पदार्थ ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है और कभी ऊर्जा पदार्थ में। सारे विश्व में पदार्थ और ऊर्जा की कुल मात्रा सदा समान रहती है।

(4) जड़ वह है जिसकी स्थिति देश और काल में है।

(5) जड़ द्रव्य में गति होने से सृष्टि का निर्माण होता है।

(6) जड़ के अतिरिक्त कोई आत्मा, ईश्वर आदि की सत्ता नहीं है। मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में जो जीवन और चेतना है वह जड़ द्रव्य का ही विकार माना जाता है।

7. जड़वाद के तर्क—(क) वैज्ञानिक खोज से पता चलता है कि प्रारम्भ में न पृथ्वी थी, न सूर्यमंडल। केवल एक गर्म निहारिका थी। उसी से टूटकर सूर्यमंडल बना। सूर्यमंडल से टूटकर नवग्रहों सहित पृथ्वी बनी। पृथ्वी के ठंडी होने पर नदी, पहाड़ आदि बने। ठंड से कार्बन और उससे जीव का विकास हुआ। धीरे-धीरे जीवों में चेतना का विकास होने लगा। जड़ द्रव्य ही सारी सृष्टि का मूल है।

(ख) विज्ञान ने सिद्ध किया है कि सारी सृष्टि में पदार्थ एवं ऊर्जा की कुल मात्रा सदा समान रहती है। यदि ये मान लिया जाय कि चेतना नाम की कोई अलग शक्ति भी है, तो विज्ञान के इस नियम का उल्लंघन हो जाता है। हम देखते हैं कि

अन्न, जल आदि भौतिक पदार्थों से जीवन शक्ति बढ़ती है तथा जड़ पदार्थ ही जीवन एवं चेतना का भी मूल है।

(ग) शरीर विज्ञान सिद्ध करता है कि चेतना मस्तिष्क पर निर्भर करती है, जो शरीर का भौतिक अंग है।

(घ) मानसिक क्रियाओं की शारीरिक क्रियाओं द्वारा व्याख्या की जानी चाहिए। सभी मानसिक क्रियाओं से पहले स्नायुमंडल में कुछ परिवर्तन होते हैं जो भौतिक ही हैं।

(ङ) यदि चेतना का अस्तित्व जड़ शरीर से अलग होता तो विज्ञान में उसका कुछ प्रमाण मिलता। अतः जड़वाद मानता है कि चेतना जड़ शरीर पर ही आधारित है।

जड़वाद के प्रकार—(1) Gross Materialism (फूहड़ अवैज्ञानिक जड़वाद)—इसके अनुसार जड़ वस्तुएं ही सत् है। प्राचीन यूनानी इस मत को मानते थे।

(2) वैज्ञानिक जड़वाद—इसके अनुसार वस्तुएं सत् नहीं किन्तु अन्दर छिपे हुए पदार्थ के परमाणु ही सत् है। परमाणु गतिशील है।

(3) विकासात्मक जड़वाद—इटली के वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने अपनी खोजों के आधार पर यह मत स्थापित किया कि जड़ पदार्थ से ही धीरे-धीरे जीवों का विकास हुआ।

तप्त नीहारिका → सूर्य → नवग्रह
↓
पृथ्वी

तप्त लावा

तप्त लावा की भाप → बादल, वृष्टि
↓
पर्वत, नदी, समुद्र
↓
मिट्टी, पानी के संयोग से अमीबा
↓
मछली
↓
मेढक
↓
कछुआ

↙ धरती पर रेंगने वाले सर्प

↘ (← पक्षी) धरती पर चलने वाले बंदर, लंगूर
↓
मनुष्य

(4) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद—कम्यूनिज्म के जन्मदाता कार्लमार्क्स ने अपने गुरु हीगेल से द्वन्द्वात्मक तर्कपद्धति ली और उसे भौतिकवाद पर लागू करने का प्रयास किया। हीगेल भारत के सांख्य दर्शन से प्रभावित था तथा उसने द्वन्द्वात्मक पद्धति के द्वारा आध्यात्मिक सत्य को प्रस्तुत किया था। हीगेल का कथन है कि कोई भी विचार पहले एक वाद के रूप में प्रकट होता है, फिर उस वाद के समस्त दोषों को प्रकट करने वाला एक विरोधी विचार (प्रतिवाद) सामने आता है, फिर वाद एवं प्रतिवाद के परस्पर संघर्ष द्वारा एक समन्वय विचार सामने आता है, जिसे सम्वाद कह सकते हैं। फिर इस सम्वाद का सम् हटा देने से शेष वाद या Thisis ही बचता है। अब इस वाद का प्रतिवाद सामने आता है। पुनः सम्वाद बनता है। यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक पूर्णज्ञान या सत्य की प्राप्ति नहीं हो जाती।

(Thisis) वाद → प्रतिवाद
↓
सम्वाद

इस द्वन्द्वात्मक तर्कपद्धति का अन्त पूर्ण सत्य से होता है। हीगेल अध्यात्मवादी था, किन्तु उनका शिष्य कार्लमार्क्स जड़वादी था। उसने हीगेल से द्वन्द्वात्मक तर्कपद्धति तो ले ली, किन्तु उसे भौतिक जगत् पर लागू किया। इस प्रकार मार्क्स ने अपने गुरु के सिद्धान्त को ही उलट दिया।

मार्क्स की मान्यताएं

(क) जड़ पदार्थ ही सत्य है।

(ख) पदार्थ में प्रगति द्वन्द्वात्मक प्रणाली से हो रही है।

जैसे—किसी ने मिट्टी की दवात बनाई → लोहे की दवात बनाई
↓
कांच की दवात
↓
पत्थर की दवात
↓
प्लास्टिक की दवात

वस्तुओं में अनिवार्य प्रगति के कारण कम्यूनिज्म को प्रगतिवाद भी कहते हैं।

(ग) आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धान्त इत्यादि किसी में भी मार्क्स का विश्वास नहीं है।

(घ) मार्क्स के मत में धर्म जनसाधारण के लिए अफीम की गोली के तुल्य है। निर्धन लोग दुःख, अभाव सह कर भी क्रांति इसलिए नहीं करते क्योंकि धर्म के

प्रभाव से वे यह मानते रहते हैं कि यह दुःख उनके पिछले कर्मों का ही प्रभाव है। मार्क्स नैतिक मूल्यों को भी किसी पुराने जमाने की बाट समझते हैं।

(ङ) समाज में अर्थ वितरण की विषमता के कारण दो वर्ग निर्मित हो गये हैं—अमीर तथा गरीब। इन दोनों वर्गों में द्वन्द्व या वर्ग-संघर्ष होना अनिवार्य है।

(च) कोई भी क्रांति तब तक सम्पूर्ण क्रान्ति नहीं कहलाती जब तक कि वह रक्तक्रांति न हो।

(छ) बलात्कार या शक्तिप्रयोग (बलप्रयोग) वह दायी (Nurse) है जो एक समाज के गर्भ से नई सामाजिक रचना को प्रकट करता है।

(ज) निर्धनों को यह अधिकार है कि वे धनिकों का धन, परिवार एवं जीवन तक छीन लेवें।

(झ) मार्क्स के मत में व्यक्तिगत परिवार उतना ही बड़ा अपराध है जितना व्यक्तिगत सम्पत्ति।

(ञ) मार्क्स के मत में धन पर सारे समाज का अधिकार होना चाहिए तथा परिवार भी पूरे समाज के अधिकार में होना चाहिए। सभी स्त्रियां समाज की, सभी पुरुष समाज के, सभी बच्चे समाज के होंगे। सम्पत्ति एवं परिवार साझा Common होने के कारण इसे Communism कहा जाता है। मार्क्स का विचार है कि सम्पत्ति के कारण ऊँच-नीच की भावना पैदा होती है। किन्तु सम्पत्ति के लिये लोभ का कारण भी परिवार ही है। सम्पत्ति संचय भी परिवार में होता है और सम्पत्ति के कम-अधिक होने से द्वेष एवं संघर्ष भी परिवारों में होते हैं। मनुष्य स्त्री को भी अपनी सम्पत्ति के समान मूल्यवान मानता है। धनी-निर्धन परिवारों के सम्बन्ध से भी ऊँच-नीच की भावना पैदा होती है। फिर विवाह या गृहस्थ जीवन पुरुष द्वारा नारी को पराधीन रखने का मंत्र है। इसलिए मार्क्स ने घोषणा की कि व्यक्तिगत सम्पत्ति की तरह परिवार भी समाप्त होना चाहिए। मार्क्स के मतानुसार लेनिन ने पेरिस (रूस का एक छोटा कस्बा) में Commune का प्रयोग किया। किन्तु उसके परिणाम बहुत भयंकर निकले। 75 प्रतिशत बच्चों को यौन रोग लग गये तथा पूरा परिवार व्यभिचार तथा हिंसा की अग्नि में जलने लगा। इसलिए यह प्रयोग बंद करना पड़ा।

(ट) रूस के मनोवैज्ञानिक यौन क्रीड़ा पर संयम या चरित्र का बंधन स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि यौन तृप्ति भी जीवों की अन्य इच्छाओं के समान एक इच्छा है। उसकी पूर्ति में कोई पाप या अपराध नहीं है। जिस प्रकार प्यास लगने पर पानी का गिलास पीना एक सहज क्रिया है। उसी प्रकार कामेच्छा होने पर संभोग करना भी एक सहज क्रिया है। जिसमें पाप या अपराध का कोई प्रश्न नहीं है। इस

प्रकार के निर्बन्ध भोग-विलास के आचरण से सारा समाज एक पतित, कुत्सित, व्यभिचार का भवन-सा बन जायेगा जिसमें चरित्र, पवित्रता एवं जीवन मूल्यों का कोई स्थान नहीं बचेगा।

(ठ) Communism से पहले England के इन्द्रिय सुखवादी Hedonist विचारकों लॉक Lock, Hume, सिजविक, मिल, बेनथम ने भी भोगवाद का नारा दिया था। 'eat, drink and be merry' (खाओ, पीओ और मौज करो)। Communism या द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का भी यही नारा है।

भारतीय जड़वाद (Indian Materialism)—भारत में चार्वाक ने अपने लोकायत दर्शन में यही स्थापना की है। विश्व का मूल तत्त्व जड़ ही है। जड़ तत्त्व के चार रूप हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। इसके अनुसार चेतना या आत्मा जड़-तत्त्व से पृथक् कुछ नहीं है। जिस प्रकार पान में कत्थे तथा चूने के सहयोग से लाल रंग निकलता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न जड़-तत्त्वों के संयोग से जीव तथा आत्मा का प्रादुर्भाव होता है। न आत्मा का अस्तित्व है, न परमात्मा, न नरक, न स्वर्ग, न मोक्ष आदि का अस्तित्व है। चार्वाक विश्व को एक यंत्र के समान मानता है। चार्वाक भोगवादी है, उसका कथन है—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पीबेत्।
भस्मभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः।।

जब तक जीओ सुख से जीओ, कर्जा उठाकर घी पीओ। भस्मीभूत जीव का लौटकर आना कैसे होगा? चार्वाक भारतीय भोगवादी होने के कारण पश्चिम के सुराम् पीबेत् के स्थान पर घृतम् पीबेत् का प्रयोग करता है।

पदार्थवाद की आलोचना—(1) जड़वाद का प्रासाद पदार्थ की जिस परिभाषा पर खड़ा है, आज वह परिभाषा ही बदल गयी है। जिस महल की ईंटें ही टूट जाय, वह महल कैसे खड़ा रह सकता है? पहले पदार्थ की परिभाषा इस प्रकार की जाती थी कि जो वस्तुएं जगह घेरती हों और वजन रखती हों, उसे पदार्थ कहते हैं। किन्तु बाद में विज्ञान ने सिद्ध किया कि पदार्थ को ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है। अतः Materialism के स्थान पर Energism का सिद्धान्त बन गया। आधुनिक विज्ञान ने सिद्ध किया कि पदार्थ के अणुओं में एक महान् शक्ति छिपी हुई है। छोटे-छोटे अंग केन्द्रीय अणु के चारों ओर वेग से चक्कर लगा रहे हैं। एक परिधि से दूसरी परिधि तक जाने में अणु से इतनी महान् शक्ति निकलती है, जिससे अणुबम तैयार हो जाता है। अतः पदार्थ के अन्तिम विश्लेषण पर पाया गया कि वहां केवल Radio Active Waves अर्थात् विद्युत् गत्यात्मक तरंगें ही हैं—

(क) जड़ पदार्थ ही सत्य है।

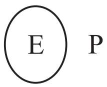
(ख) जड़ पदार्थ सूक्ष्म कणों Molecules के बने हैं।

(ग) Molecule को पुनः तोड़कर छोटे Atoms बने।

(घ) Atom का भी विभाजन करके उसके परमाणु बने।

1. Electron (केन्द्रस्थ परमाणु)।

2. Proton (परिधि स्थित परमाणु) परिधि में चक्कर लगाते हैं।



3. Electron के इर्द-गिर्द चक्कर लगाने वाले Proton परमाणुओं की अनेक परिधियां बन जाती हैं। जैसे भंवर में जलबिन्दु एक केन्द्र के इर्द-गिर्द वेग से घूमते हैं।

(च) अणु के विस्फोटन से परमाणु अन्दर की परिधि से जब बाहर की परिधि में आता है, तब बहुत विराट् शक्ति प्रकट होती है।

(2) विश्व में हमें जड़ और चेतन दोनों का अनुभव होता है। इन दोनों के संयोग से पिण्ड और ब्रह्माण्ड का कार्य चल रहा है। द्वैतवादी दोनों को सत् मानते हैं। यदि पदार्थ ही अंतिम सत्ता है तो वह चेतन की व्याख्या करके दिखाये जैसे चेतन जड़ की व्याख्या करता है।

जड़	**चेतन**
1. मृत, अजीव, अचेतन।	1. अमृत, सजीव, सचेतन।
2. जड़, अन्य जड़ पदार्थों को भी नहीं जानता। एक पत्थर अन्य पत्थरों, हीरों को नहीं पहचानता। एक मुर्दा अन्य मुर्दों को नहीं पहचानता।	2. चेतन अन्य जड़ पदार्थों को जानता है। क. सब खनिज पदार्थों को मनुष्य ने जाना। ख. सब रसायन औषधि, धातु को जाना। ग. सब वनस्पतियों को जाना। घ. सब कीट-कीटाणु को जाना। ड. सब पशु-पक्षी को जाना। च. सब मनुष्यों को जाना। छ. जगत् को जाना।
3. जड़ अन्य जड़ के परस्पर संबंध को भी नहीं जानता।	3. चेतन एक जड़ के दूसरे जड़ से संबंध को जानता है—पेट्रोल, अग्नि, चूना, हलदी, एसिड, लिटमस आदि।

4. जड़—जड़ तथा चेतन के संबंध को भी नहीं जानता, खेत-मालिक को नहीं जानता, शरीर क्षेत्र है।	4. चेतन (क्षेत्रज्ञ) जड़ के साथ चेतन के संबंध को जानता है।
5. जड़ मालिक को नहीं जानता।	5. चेतन मालिक को पहचानता है।
6. जड़ लक्ष्य को भी नहीं जानता।	6. चेतन लक्ष्य को पहचानता है।
7. जड़ स्वयं को नहीं जानता।	7. चेतन स्वयं को भी जान सकता है।

क्योंकि जड़ न अपनी व्याख्या कर सकता है और न चेतन की व्याख्या कर सकता है और दूसरी ओर चेतन जड़ और चेतन दोनों की व्याख्या कर सकता है। इसलिए विश्व की अन्तिम सत्ता चेतन ही सिद्ध होती है, जड़ नहीं।

(3) जो वैज्ञानिक या जड़वादी यह कहता है कि जड़-तत्त्व ही अंतिम सत्ता है वह वैज्ञानिक स्वयं चेतन और सजीव है, जड़ नहीं। जड़ में न जीवन है न चेतना, हम में जीवन और चेतना, दोनों हैं। प्रश्न पैदा होता है, तब हममें यह जीवन और चेतना कहां से आ गई। 'You cannot get something out of nothing.' अर्थात् आप शून्य में से कुछ प्राप्त नहीं कर सकते। पत्थर को निचोड़ने से दूध नहीं निकाला जा सकता। इसी प्रकार निर्जीव और अचेतन जड़ के मंथन से जीवन और चेतना प्रकट नहीं हो सकती।

(4) जो जड़वादी (डार्विन, मार्क्स, चार्वाक) मानते हैं कि जड़-पदार्थ से ही जीवन एवं चेतना का विकास होता है, वे भी इसको प्रमाणित नहीं कर सकते। उन्हें भी अपरोक्ष रीति से यह मानना पड़ता है कि केवल जड़ से सृष्टि की व्याख्या नहीं हो सकती। वे चालाकी से चेतन को जड़ का ही विकार कहते रहते हैं, जबकि जड़ और चेतन के स्वरूप में आकाश-पाताल का अंतर है। जड़ को ही अंतिम सत्ता मानना उनका हठधर्म है।

(5) बर्ट्रेंड रसेल का मत है कि विश्व की अंतिम सत्ता जड़ और चेतन दोनों से परे है। वह एक ऐसी अनिर्वचनीय शक्ति है, जो जड़-चेतन दोनों से परे होते हुए जड़ और चेतन का आधार भी है। इससे भी पदार्थवाद खंडित हो जाता है।

(6) विश्व को एक यंत्र के समान मानना भी आधुनिक विज्ञान की खोजों से गलत सिद्ध होता है। यंत्र में हर वस्तु एवं क्रिया पहले से नियत होती है तथा यंत्र पुनः पुनः पहले जैसी गति दोहराता रहता है। जैसे घड़ी की सूइयां, इसमें कोई प्रगति की संभावना नहीं है। आधुनिक विज्ञान की खोज है कि विद्युत् शक्ति (Radio Active Energy) किसी यंत्र के नियम में बंधी हुई नहीं है।

(7) आइन्सटाइन ने सिद्ध किया है कि प्रकृति जगत् में जो कुछ है। सब सापेक्ष है। इसके अनुसार जड़ द्रव्य एक स्वतंत्र सत्ता न होकर वह भी सापेक्ष ही है। जड़ चेतन की अपेक्षा जड़ है।

(8) जड़वाद सम्पूर्ण विश्व की संगत व्याख्या नहीं कर सकता। जीव और अजीव में मौलिक भेद है। सजीव प्राणी अंग संचालन, आत्म विकास, आत्म रक्षा आदि की चेष्टा करते हैं। जो जड़ नहीं कर सकते।

(9) जड़वाद मन और चेतना की व्याख्या करने में भी असमर्थ है। शरीर और मन का अन्योन्याश्रय संबंध अवश्य है, किन्तु मन ही तन का अधिकांशतः संचालन करता है। जैसे कि मन में क्रोध का भाव आने पर तन में क्रोध के लक्षण स्वतः प्रकट होते हैं। जड़वादी उलटे तन के लक्षणों से मन का भाव उत्पन्न होना मानते हैं। जो बिल्कुल गलत है।

(10) प्रकृतिवाद के आधार पर जड़वादी मानते हैं कि जड़ के विकासक्रम में जीव और चेतना की उत्पत्ति होती है। अब प्रश्न पैदा होता है कि विकास की पहचान क्या है?

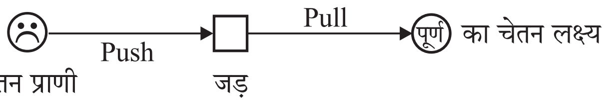
प्रगति = प्र + गति अर्थात् लक्ष्य की ओर बढ़ना प्र (आगे) (Pro) गति (Gress) बढ़ना।

परागति — लक्ष्य के विपरीत
विनाश — लक्ष्य के विपरीत
दुर्गति — बुरी गति
अवगति — बुरी गति
विगति — विपरीत गति

प्रगति या दुर्गति का निर्णय लक्ष्य के आधार पर होगा। यदि लक्ष्य हो 100 फुट ऊंचा मीनार, तो जितना ऊपर निर्माण होगा, उतनी प्रगति होगी। यदि लक्ष्य 100 फुट गहरा कुआं हो तो जितना नीचे निर्माण होगा, उतनी प्रगति होगी।

विकास तभी विकास माना जायेगा जब पूर्वनिश्चित लक्ष्य की ओर प्रगति होगी। जड़ पदार्थ किसी लक्ष्य को पहचानता ही नहीं, तो जड़ किसकी ओर विकास करेगा। लक्ष्य की पहचान केवल चेतन को होती है। पूर्णत्व का लक्ष्य पूर्वनिश्चित मान लेने का अर्थ है, जड़ से पूर्व कोई पूर्ण सनातन सत्ता है। अतः भौतिक जड़वादी विकासवाद अपने आप खंडित हो जाता है। इसके स्थान पर आध्यात्मिक विकासवाद सिद्ध होता है।

जड़ को पीछे से कोई चेतन ही उसे लक्ष्य की ओर प्रेरित करके बढ़ा रहा है और जड़ के आगे कोई चेतन ही लक्ष्य के रूप में उसे अपनी ओर आकर्षित कर रहा है।



विकास शब्द स्वयं स्पष्ट कर रहा है कि लक्ष्य पूर्वनिश्चित है। अतः भौतिकवादियों का जड़ विकासवाद का सिद्धान्त बिना चेतन सत्ता को माने खंडित हो जाता है।

11. जड़वादी विश्व की व्याख्या प्रकृतिवाद के आधार पर करने की चेष्टा करते हैं। वस्तुओं की व्याख्या प्रकृति के नियमों से की जाती है। उन नियमों की व्याख्या सर्वव्यापक नियमों से की जाती है। किन्तु वे सर्वव्यापक नियम क्या अपने आप में जड़ हैं या चेतन, यह प्रश्न शेष बच जाता है। फिर उन नियमों की कोई नियामक सत्ता भी है, या नियम अपने-आप अंधी गति से चल रहे हैं। इन प्रश्नों का समाधान जड़वाद नहीं दे सकता। सारे विश्व में एक ही नियम है, जो न मनमानी कर सकता है, न अनुशासन भंग कर सकता है। तो सहज ही प्रश्न खड़ा होता है कि इस नियम का कोई नियंता, कोई नियामक, कोई विश्वव्यापी शासक है अथवा नहीं। जड़वाद यहां हार जाता है। विश्व के नियमों में हम एक नैतिक उद्देश्य का संकेत भी पाते हैं जिसकी जड़वाद कोई व्याख्या नहीं कर सकता। जैसे—शिशु के जन्म के साथ ही माता के स्तनों में दूध उतर आता है और बच्चे के दांत आ जाने पर मां का दूध सूख जाता है—

जब दांत न थे, तब दूध दियो।
जब दांत दिये, तो क्या अन्न न दोगे।। (तुलसीदास)

जब हुए मात के गर्भ में, करे रखवाली जोय।
अब तो हैं नौ वर्ष के, क्यों न सहाय होय।।

गुरु गोविन्द सिंह ने पिता को उत्तर देते हुए ये वचन कहे थे।

स्पष्टतः प्रकृति की एक-एक चीज में उद्देश्य भरा हुआ है। छोटे नियम बड़े नियम से, बड़े नियम उससे बड़े नियम से बंधे हुए हैं।

12. जड़वाद पदार्थों की कुछ व्याख्या करता है, किन्तु पदार्थों में जिन गुणों की अनुभूति होती है, उनकी व्याख्या नहीं कर सकता। जैसे—फूल का रंग, रूप, आकार, सुगन्धि, कोमलता, उससे प्राप्त होने वाले आनन्द, काव्यप्रेरणा, आध्यात्मिक प्रेरणा, इनमें से किसी की व्याख्या जड़वाद द्वारा नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए—स्नेह, प्रेम, आनन्द, श्रद्धा, भक्ति, वात्सल्य, कर्तव्यभावना जिनके लिए मनुष्य अपना बड़े से बड़ा त्याग करने को प्रस्तुत रहता है, जड़वाद की प्रयोगशाला में उनका कुछ भी अर्थ नहीं। महान् मानवीय अनुभूतियां, आदर्श एवं जीवनमूल्य जड़वाद की तराजू में तौले नहीं जा सकते। शरीर साढ़े तीन हाथ

का मांस का लोथड़ा है। जिसमें इतना भाग ऑक्सीजन, कार्बन आदि है। इससे इस मनुष्य का दूसरे से क्या रिश्ता है पता नहीं चलता। पुत्र भाव, माता भाव, भ्राता भाव कुछ भी स्पष्ट नहीं। इससे दया, स्नेह, ममता, श्रद्धा, विश्वास की कोई भी भावना नहीं उभरेगी।

13. जड़वाद के अनुसार अणुओं के आकस्मिक संयोग-वियोग से विश्व की उत्पत्ति हुई है। यदि विश्व अणुओं के आकस्मिक मिलने या हटने से बना होता, तो विश्व में कोई नियम या व्यवस्था न दिखायी देती। यदि अकस्मात् बहुत से परमाणु एक जगह इकट्ठे हो जायें या अचानक बिखर जायें, तो वहां नियम या व्यवस्था कुछ नहीं बचे। अतः सृष्टि की व्यवस्था के पीछे कोई सुविचारित नियम है, अंधा नियम नहीं। सृष्टि में एक दिव्य योजना काम कर रही है।

14. जड़वाद की मान्यता है कि सृष्टि में पदार्थ और ऊर्जा की कुल मात्रा सदा एकसमान रहती है। इस मान्यता से जड़वाद चेतना की सत्ता को टाल जाता है। किन्तु पदार्थ की अनश्वरता का नियम भौतिक नियम है। उससे अभौतिक चेतना की व्याख्या नहीं हो सकती है, और न टालना ही तर्कसंगत है।

15. ज्ञानयोग की दृष्टि से भी जड़वाद खंडित हो जाता है। ज्ञान के लिए एक अनिवार्य त्रिपुटि है—ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय। बिना ज्ञाता के ज्ञेय का अस्तित्व नहीं। सब ज्ञान भी ज्ञाता पर अवलंबित है। यदि ज्ञाता विश्वसनीय है, तो ज्ञान विश्वसनीय है। यदि ज्ञाता अविश्वसनीय है, तो ज्ञान भी अविश्वसनीय है। यदि अंधा और झूठा व्यक्ति कहे कि पांच पैर वाला दैत्य देखा, तो उसकी बात पर कौन विश्वास करेगा?

जब जड़वादी कहते हैं कि जड़तत्त्व ही परम सत्य है, तो प्रश्न उठता है कि इस ज्ञान को जाना किसने? यदि वे कहें जड़ ने ही जाना कि जड़ ही परम सत्य है, तो यह अविश्वसनीय है। क्योंकि जड़ अंधा है, ज्ञाता अंधा हो तो ज्ञान भी अंधा। यदि चेतन ने जाना जो जड़वाद स्वयं खंडित हो जाता है। तब जड़ अंतिम सत्य नहीं रहा। उसका सिद्धान्त कट जाता है।

16. जड़वाद में मनुष्य के व्यक्तित्व का, उसके मानसिक जीवन, आत्मा, संकल्प, स्वतंत्रता, नैतिक आदर्श इत्यादि का नाश हो जाता है।

17. साम्यवाद के रूप में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद भी हिंसा, अशांति, व्यभिचार आदि का कारण बनता है। पश्चिम के भोगवाद से मानवता संत्रस्त होकर त्राहि-त्राहि कर रही है।

18. जड़वाद में आदर्श के लिए कोई स्थान नहीं। वास्तव में बिना आदर्श के जीवन में प्रगति हो ही नहीं सकती। यथार्थ से आदर्श की ओर बढ़ना ही प्रगति

का मूल मंत्र है। अतः जड़वाद मानवता की प्रगति में साधक न होकर बाधक बनता है।

19. कर्म-सिद्धान्त के बिना विश्व में नैतिकता के बीज का नाश हो जायेगा। जड़वाद में कर्म-सिद्धान्त की गुंजाइश नहीं है।

20. जड़वाद पुनर्जन्म को नहीं मानता। किन्तु संसार में हजारों-लाखों ऐसे सच्चे दृष्टान्त हैं, जहां वास्तव में बच्चे अपने पिछले जन्म की स्मृतियों को लेकर नये जन्मों में प्रकट हुए। यदि मनुष्य जड़ शरीर ही है, जो मर कर भस्म हो गया अथवा धरती में गाड़ दिया गया। तो नये जन्म में, नये स्थान पर, नये शरीर में पिछले जन्म की स्मृतियों को किसने पहुंचाया? निश्चय ही मनुष्य केवल एक पदार्थ का टुकड़ा या अणु-परमाणुओं का समूह ही नहीं है। वह एक चेतन आत्मा है जो जन्म और मृत्यु की सीमाओं को लांघ जाता है—

इस जन्म-मरण के आर-पार।
शाश्वत जीवन नौका-विहार।। (सुमित्रानन्दन पंत)

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्र भवतु सम्मनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदतभद्रया।।

अथर्व, 3/30/2-3

पिता के जीवन में कोई व्रत हो, पुत्र अपने माता-पिता का आज्ञानुवर्ती और उनके साथ एक-मन होकर रहे। पत्नी अपने पति के प्रति मधुर और स्नेहयुक्त वाणी का ही व्यवहार करे। भाई भाई के साथ और बहन बहन के साथ द्वेष न करे। तुम्हें चाहिए कि एक-मन होकर समान आदर्शों का अनुसरण करते हुए परस्पर स्नेह और प्रेम को बढ़ाने वाली वाणी का ही व्यवहार करो।

द्वैतवाद

द्वैतवाद—वह दार्शनिक विचारधारा जिसके अनुसार विश्व की अन्तिम सचाई एक नहीं होकर दो है। इसे द्वैतवाद या Dualism कहते हैं।

जड़वाद तथा चैतन्यवाद एकतत्त्ववादी विचारधारायें हैं। द्वैतवाद दोनों (जड़ और चेतन) को सत् मानता है। द्वैतवाद की मान्यता इस प्रकार है—

(क) सृष्टि की व्याख्या न केवल मात्र जड़ तत्त्व से हो सकती है और न केवल मात्र चैतन्य तत्त्व से। जड़ और चेतन दोनों मौलिक हैं। न जड़ चेतन का विवर्त है और न चेतन जड़ का विकसित रूप। जड़ का गुण विस्तार है और चेतना का गुण प्रकाश है। इसमें विस्तार नहीं होता। जड़ विस्तृत है, चेतन नहीं।

(ख) मूल तत्त्व न केवल जड़ रूप है और न चेतन रूप है, अपितु दोनों है। द्वैत वास्तविक है, पारमार्थिक है।

(ग) जड़ और चेतन दोनों की प्रकृति भिन्न एवं परस्पर विरोधी है।

जड़ स्थूल है, चेतन सूक्ष्म। जड़ विस्तृत है और चेतन देश के बंधन से मुक्त।

जड़ निर्जीव है तो चेतन सजीव।

जड़ ज्ञानशून्य है तो चेतना ज्ञानसम्पन्न।

जड़ भौतिक है, चेतन अभौतिक है।

जड़ दृश्य है, चेतन द्रष्टा।

जड़ प्रकृति है तो चेतन पुरुष।

जड़ क्षेत्र है तो चेतन क्षेत्रज्ञ।

जड़ शरीर है तो चेतन आत्मा।

जड़ यंत्र है तो चेतन यंत्री।

जड़ ज्ञेय है तो चेतन ज्ञाता।

जड़ परिधि है तो चेतन केन्द्र।

जड़ पदार्थ है तो चेतन प्रयोक्ता।

जड़ घूर है तो चेतन नूर।

जड़ मृण्मय है तो चेतन चिन्मय।

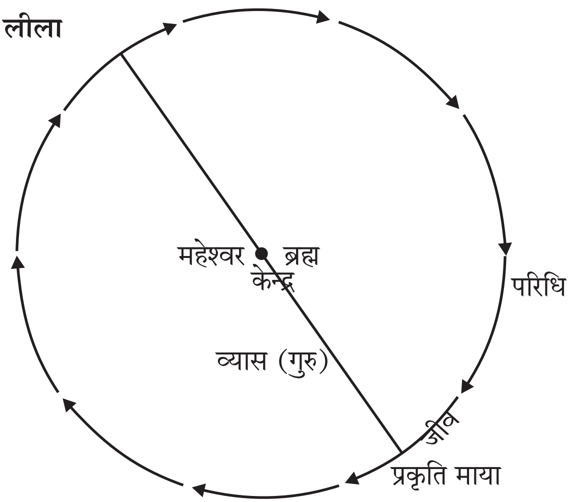
जड़ परिवर्तनीय है तो चेतन अपरिवर्तनीय।

जड़ माया है तो चेतन महेश्वर।

जड बहिरंग है तो चेतन अन्तरंग।

इन दोनों में परस्पर विरोधी गुण होते हुए भी दोनों एक-दूसरे के पूरक भी हैं। मानव जड़ चेतन का संयोग ही है।

प्रकृति-पुरुष लीला



परिधि रेखा से बनी है। रेखा बिन्दुओं से बनी है। A Line is a continuation of points.

सरल रेखा अनन्त तक बढ़ती जावे तो गोलाकार हो जाती है।

वृत्त का आधार केन्द्र है, बिन्दु है।

वृत्त बना ही बिन्दुओं के विस्तार से है।

बिन्दु का कोई आकार नहीं, न लम्बाई, न चौड़ाई, न मोटाई

ब्रह्म का कोई आकार नहीं, निराकार।

ब्रह्म से बनने वाले ब्रह्माण्ड का आकार है। जैसे बिन्दु से वृत्त (साकार) बना।

बिन्दु ही वृत्त का कारण है। बिन्दु ही वृत्त (परिधि) में व्याप्त है।

ब्रह्म ही सृष्टि का कारण। वही सृष्टि में व्याप्त **'तत् सृष्ट्वा तदेवानु-प्राविशत्'**—वेद।

वृत्त (परिधि में) चक्र है। भटकना है, आदि-अन्त रहित चक्कर है। परिधि में प्रकृति है। वहां 84 लाख का चक्र है।

ज्योतिष में ऊर्ध्व=केन्द्र, अधः=परिधि।

गीता—

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।। 15/1 गीता

ऊपर मूल और शाखा नीचे, पीपल तरु लासानी है।
पत्तों में है वेद ऋचाएं, जो जाने सो ज्ञानी है।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।। 8/16 गीता

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। 18/61

कबीर—'चलती चक्की देखि के दिया कबीरा रोय।
दुइ पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।।'

दो पाट द्वैत के हैं। प्रत्येक गुण का विरोधी गुण भी है। सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय, मित्र-शत्रु, गर्मी-सर्दी, अपना-पराया। जहां प्रकृति, वहां द्वैत।

कमाल—चलती चक्की देखि के, दिया कमाला हास।
उनको चाकी क्या कहे, जो कीली के पास।।

जो दाने (जीव) केन्द्र (चैतन्य सत्ता, अपने मूल) की ओर जाते हैं वे मुक्त हो जाते हैं।

केन्द्र में शक्ति, परिधि में चक्कर

केन्द्र में (नियन्ता) नियंत्रणकर्ता, परिधि में परवशता बंधन (नियंत्रित)

द्वैतवाद की युक्तियां—(1) हमारा अनुभव प्रमाणित करता है कि विश्व में जड़ और चेतन दो प्रकार की सत्ताएं हैं। क्षेत्र जड़ है तो क्षेत्रज्ञ चेतन। जड़ विस्तृत अचेतन है और मन या आत्मा अविस्तृत चेतन। यदि मूल तत्त्व की प्रकृति में द्वैत नहीं तो हमारे अनुभव दो प्रकार के क्यों होते हैं। अधिकांश दार्शनिक एवं वैज्ञानिक द्वैतवाद को मानकर चलते हैं।

(2) जड़ पदार्थ का अनुभव चेतन के अनुभव से भिन्न एवं विरोधी होता है। अतः दोनों को एक न मानकर दो भिन्न तत्त्व मानना अनिवार्य है। जब दोनों में परस्पर विरोध है तो एक से दूसरे की उत्पत्ति असम्भव है। जड़ से जीवन और

चेतना पैदा नहीं हो सकती। और न चेतन से ही जड़ पदार्थ उत्पन्न हो सकते हैं। अतः मूल तत्त्व के स्वरूप में प्रारम्भ से ही बुनियादी द्वैत है।

जड़ और चेतन दोनों का अनुभव सब लोगों को होता है। इस सार्वजनिक अनुभूति से भी दोनों की सत्ता सिद्ध होती है। हम संसार की अन्य सब वस्तुओं की सत्ता में संदेह कर सकते हैं पर स्वयं अपने अस्तित्व पर संदेह करते ही अपना अस्तित्व सिद्ध हो जाता है। जब संदेह है तो संदेह करने वाला भी जरूर है। इसी प्रकार जड़ पदार्थ के विषय में भी सैकड़ों, हजारों, लाखों लोगों का अनुभव एकसमान देखकर मानना पड़ता है कि जड़ पदार्थ की भी सत्ता अवश्य है।

द्वैतवाद का ऐतिहासिक रूप : (क) सांख्य दर्शन—कपिल के सांख्य दर्शन में पुरुष और प्रकृति दो सनातन सत्तायें मानी गयी हैं। मूल प्रकृति अव्यक्त (रूपविहीन) है तथा इसमें तीन गुणों का समन्वय है—सत्, रज और तम। तम=अंधेरा। निद्रा, आलस्य, प्रमाद तमोगुण के लक्षण हैं। प्राचीन प्रतीक है कुम्भकर्ण। रजोगुण—कामनाओं से प्रेरित होकर खूब कर्म करना। जैसे रावण, अर्जुन आदि। सतोगुण—परिश्रम, संघर्ष, साधना, तपस्या के उपरान्त ज्ञानबोध से प्राप्त होने वाली शान्ति। जैसे रामकृष्ण परमहंस।

ये तीनों गुण प्रायः बिल्कुल अलग-अलग तथा अन्य गुणों से अलिप्त नहीं रह सकते। वे परस्पर एक-दूसरे से मिले-जुले रहते हैं।

एक ही व्यक्ति के जीवन में प्रातःकाल सतोगुण का आधिक्य होता है। मध्याह्न में रजोगुण का आधिक्य एवं रात्रि में तमोगुण का आधिक्य रहता है। उसी व्यक्ति में सत् गुण की प्रकृति विशेष होने से वह दिन में परिश्रम काल में भी पूर्ण स्वाध्याय करता है। रात्रि के तमोगुण के काल में भी आध्यात्मिक चिन्तन, ध्यान करता है। बाह्य प्रकृति (परिस्थिति) भी मनुष्य को प्रभावित करती है और मनुष्य की अंतःप्रकृति (अंतःस्थिति) बाह्य प्रकृति को प्रभावित करती है और तमोगुण प्रवृत्ति का व्यक्ति ब्राह्ममुहूर्त में आलस्य में, दिन के कर्म के समय प्रमाद में और रात्रि को निद्राधीन रहता है।

सत्त्वोन्मुखी रजोगुण—वीरों में, महापुरुषों में, इतिहास निर्माताओं में, अवतारों में, रजोगुणी कर्म महान् आदर्श (ज्ञान, शान्ति, आनन्द) की ओर लगा हुआ निष्काम कर्मयोगी बन जाता है। उदाहरणार्थ—शिवाजी, राणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह आदि।

तमोभिमुखी रजोगुण—तमोगुण (निद्रा, आलस्य, प्रमाद) की ओर ले जाने वाला कर्म व्यक्ति को स्वार्थी, सकामी, संघर्षशील, ईर्ष्यालु, द्वेषी और क्रोधी बना डालता है। जैसे कंस, दुर्योधन, रावण आदि।

रजोगुण (कर्म) कर्म करने को प्रेरित करता है —
- सत्त्व (ज्ञान-शांति-आनन्द) की ओर जाने से सत्कर्म, निष्काम कर्म।
- तम (निद्रा, आलस्य, प्रमाद, भोग) की ओर ले जाने वाला हीन कर्म।

ऐसा कोई भी नहीं है जिसमें सिर्फ तमोगुण हो या रजोगुण या सतोगुण। मनुष्य में तीनों गुणों का समावेश होता है, पर जिस गुण का आधिक्य होता है उसी के नाम से पुकारा जाता है। प्रकृति के तीनों गुण मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। वह जिस ओर खिंच जाता है, वैसे ही गुणों का विकास उसके जीवन में होता है।

मनुष्य के सतोगुणी होने पर उसे समाज में प्रतिष्ठा, उच्चपद प्राप्त हो जाता है तो उसमें अहंकार का प्रवेश हो जाता है और समाज की अधिक से अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके और सतोगुणी के नाम पर समस्त भोगों एवं ऐश्वर्य भोग सके इसके लिए आश्रम की स्थापना, युवक-युवतियों को शिष्य बनाना आदि। यानी सतोगुणी के माध्यम से या नाम से संसार के भोगों एवं प्रतिष्ठा के लिये सतोगुण को व्यवसाय बना लेते हैं।

इस तरह प्रकृति के तीनों गुण सदैव पुरुष को तमाचा मारने का अवसर देखते रहते हैं।

अतः तमोगुण रूपी कुम्भकर्ण को समाप्त कर देवें, रावण रूपी रजोगुण को चीर देवें एवं विभीषण रूपी सतोगुण को राम के चरणों में समर्पित कर दें ताकि उसमें अहंकार का प्रवेश न हो पाए।

यह तीन गुण बाह्य प्रकृति में भी हैं, अन्तःप्रकृति में भी हैं। बाह्य प्रकृति और अंतःप्रकृति की क्रिया-प्रतिक्रिया चलती रहती है। अन्तःस्थिति दुर्बल होने से मनुष्य परिस्थिति का दास बन जाता है। अन्तःस्थिति सुदृढ़ होने से वह अपने अनुकूल ढाल लेता है। यह तीनों गुण अलग नहीं हो सकते। सदा इकट्ठे रहते हैं। इनका प्रभुत्व घटता-बढ़ता रहता है।

मूल प्रकृति का नाम है अव्यक्त। वह रूपविहीन है। पुरुष की दृष्टि पड़ने से इसमें परिवर्तन होता रहता है। परिवर्तन का कारण तीन गुण ही है। परिवर्तनशील प्रकृति व्यक्त प्रकृति कहलाती है। यह इन्द्रियों के भोगने का विषय है। यह अचेतन क्रियाशील है।

(क) मूल प्रकृति (अव्यक्त)—शान्त, अचेतन, क्रियाहीन है। तीनों गुण साम्यावस्था में सृष्टि से पूर्व या प्रलय के बाद रहते हैं। प्रलय=सब कुछ का प्रकृति में लय हो जाना। सुषुप्तिकाल=क्षणिक प्रलय। नाम लय, रूप लय, देश लय,

काल लय, पात्र लय, परिस्थिति लय, देहाध्यास लय, मनाध्यास, शारीरिक रोग, वंश, कुल, जाति, वर्ण, अवस्था... लय।

मूल प्रकृति एक माता के समान जीव का उद्धार करने में सहायक है। प्रकृति माता=पार्वती माता।

(ख) क्रियाशील प्रकृति (व्यक्त)—त्रिगुणमयी, परिवर्तनशील, क्रियाशील, अचेतन, इन्द्रियों के लिए भोग्य विषय। प्रकृति के पांच महाभूतों के पांच गुण—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध—इन्द्रियों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इन्द्रियों के विषयों में लिप्त होने से इन्द्रियों का स्वामी मन भी उन्हीं में बंध जाता है। व्यक्त प्रकृति बंधन का कारण है।

पुरुष—पुरुष प्रकृति रूपी नटी का स्वामी एवं द्रष्टा है। वह चेतन एवं निष्क्रिय है। पुरुष प्रकृति के संयोग से विश्व का विकास होता है। पुरुष मूलतः गुणों से परे है। गुण तो प्रकृति का है जो पुरुष में प्रतिबिम्बित होने लगते हैं। पुरुष ज्ञाता, भोक्ता और नित्य है।

बंधन का कारण—जीव के बंधन का कारण अविवेक है। वह जड़ चेतन के भेद या पुरुष प्रकृति के भेद को भूल जाता है। इसलिए बंधन में पड़ जाता है।

त्रिविध दुःख—बंधन तीन दुःखों के रूप में है—(1) आध्यात्मिक दुःख= अपने भीतर के दुःख, मानसिक। (2) आधिदैविक=दैव, भाग्य अथवा प्राकृतिक प्रकोप से होने वाले दुःख। (3) आधिभौतिक=शारीरिक एवं भौतिक क्षति।

मोक्ष—त्रिविध ताप या त्रिविध दुःख का नाश या छुटकारा।

यूनान—यूनान का प्राचीन दार्शनिक Thales जल को मूल तत्त्व मानता है। Aneximenus वायु को मूल तत्त्व मानता है। Hreclictas अग्नि को मूल तत्त्व मानता है। पर ये तीनों उन तत्त्वों में जीव या चेतना का समावेश भी मानते हैं। अतः वे मूल तत्त्व को एकात्मक मान कर भी इसकी प्रकृति में द्वैत मानते हैं।

Anexigoros मानता है कि जड़ तत्त्व के साथ चेतन शक्ति भी सत् है।

प्लेटो और अरस्तू में द्वैतवादी विचार मिलता है। अच्छाई और बुराई के बीज चेतन और जड़ तत्त्वों में हैं। जड़ तत्त्व जगत् का उपादान Material cause कारण है और ईश्वर या चेतन सत्ता जगत् का निमित्त कारण (Efficient cause) है। अरस्तू निम्नलिखित कारणों का विश्लेषण करता है—

(क) Material cause (उपादान कारण)—लकड़ी।

(ख) Formal cause (प्रारूप कारण)—नक्शा।

(ग) Efficient cause (निमित्त कारण)—बढ़ई।

(घ) Instrumental cause (यंत्र उपकरण, साधन)—औजार।

(ङ) Final cause (उद्देश्य कारण)—रोजी-रोटी की समस्या।

धार्मिक चिन्तक आगस्टाइन भी शरीर और आत्मा, दो तत्त्व मानता है।

फ्रांस का दार्शनिक देकार्त यूरोप में दर्शन के इतिहास में बड़ा महत्त्व रखता है। इसे यूरोप के नवदर्शन का पिता कहा जाता है। एक ओर वह पश्चिम में Cordinate ज्यामिति का आविष्कर्ता माना जाता है और दूसरी ओर दर्शन के क्षेत्र में भी द्वैतवाद का सबसे प्रमुख प्रयोक्ता माना जाता है। वह प्रारंभ में संदेह से शुरू करता है। उसका कथन है कि प्रत्येक वस्तु के अस्तित्व पर संदेह है। इस तरह जीव, जगत् और ब्रह्म सबकी सत्ता संदेहास्पद हो जाती है, पर देकार्त पुनः तर्क करता है—जब मैं संदेह करता हूं तो कम से कम मैं संदेह करने वाला तो अवश्य हूं। Cogito Ergo sum—I think, therefore, I am. मैं संदेहकर्ता हूं, अतः मैं हूं।

इससे पूर्व भगवान् शंकराचार्य ने भी यही तर्क दिया है कि ज्यों-ज्यों मैं अन्य वस्तुओं की सत्ता के विषय में संदेह करता जाता हूं त्यों-त्यों मैं अपनी (संदेह करने वाली) सत्ता को पुष्ट करता जाता हूं। Doubt prespoises the doubter. देकार्त ने इस तरह आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के बाद प्रकृति की स्थिति को सिद्ध किया। उसने नियम बनाया कि जो प्रत्यय (concept) पूर्ण रूप में स्पष्ट है वह सत् का सूचक है। देकार्त के अनुसार प्रकृति इसलिए सत् है कि इसे प्राप्त होने वाले प्रत्यय पूर्ण रूप से स्पष्ट है। देकार्त के मत में पुरुष और प्रकृति, जड़ और चेतन में जातिगत भेद है। जड़ का गुण विस्तार और चेतन का गुण चेतना है।

यंत्र-यंत्री—आगे चल कर देकार्त ने यंत्र और यंत्री का भेद बताया। विज्ञान ने यंत्रों का अध्ययन शुरू किया और दर्शन ने यंत्री का अध्ययन।

ईश्वर—देकार्त ने ईश्वर की सत्ता के भी बड़े सुंदर प्रमाण दिये हैं।

(1) कारण-नियम (Cause, Proof)—विश्व में प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई कारण होता है। बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता। अतः इतने बड़े विराट् विश्व का कारण ईश्वर अवश्य है। यदि आगे कोई ईश्वर का भी कारण खोजे तो यह विषम चक्र, अनन्त एवं अगाध ही रहेगा। इसका कोई हल नहीं हो सकता। इस कठिनाई से बचने के लिए देकार्त ईश्वर को आदिकारण मानता है। इसे ही भारतीय दर्शन में स्वयंभू माना जाता है। जिसे यूरोप के दार्शनिक Cause Sui (स्व कारण) मानते हैं।

(2) सृष्टि और स्रष्टा (Design and Designer)—सृष्टि एक व्यवस्थित रचना है। इतनी सुंदर सुव्यवस्थित सृष्टि का कोई कलाकार स्रष्टा, नियामक भी

अवश्य होगा। यह Design सुंदर है। नमूना या सुंदर रचना बनाने वाला अवश्य होगा। नभ मण्डल में अनन्त ज्योतियां, नक्षत्रों की नियमित गतियां, चन्द्र-सूर्य-धरती की व्यवस्थित लीला, वनस्पतियों का नियमबद्ध विकास, फूलों और फलों का सौन्दर्य एवं मिठास, वनराज द्वारा वायुशोधन, सृष्टि के कण-कण में सौन्दर्य की छटा। यह सब कुछ किसी महान् कलाकार के बिना कभी सम्भव नहीं है।

(3) प्रयोजनवादी प्रमाण (Teleological proof)—सृष्टि में कुछ भी निष्प्रयोजन नहीं है। उसके पीछे सृष्टिकर्ता का महान् प्रयोजन निहित है। मनुष्य को दिन में ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। उस समय वृक्ष ऑक्सीजन छोड़ते हैं। मनुष्य द्वारा त्यागा हुआ वायु वृक्ष का भोजन है, त्यागा हुआ मैला खेत के लिये खाद। इस तरह सृष्टि के पग-पग में ज्ञान-सूझ वाली परम बुद्धिमान् सत्ता का प्रयोजन छिपा है।

सत्तामूलक प्रमाण (Ontological proof)—ईश्वर का विचार एक पूर्ण सत्ता का विचार है। ईश्वर अर्थात पूर्ण पुरुष। जो पूर्ण है उसकी सत्ता है, तभी तो वह पूर्ण है।

नैतिक प्रमाण (Moral proof)—God is the source of all Goodness. समस्त नैतिकता का मूल परमेश्वर हैं, Goodness is road to Godliness. सदाचार ही ईश्वर प्राप्ति का साधना पथ है। Without Goodness there is no God. बिना सदाचार के ईश्वर कुछ नहीं है। Good (ऋतम्) + God (सत्यम्) दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक को पाने से दूसरा अपने आप प्राप्त हो जाता है। God is complete Goodness परमेश्वर पूर्ण शिव (कल्याण) है। बिना ईश्वर के विश्व में नैतिकता नहीं बचेगी। कांट ने ईश्वर के अस्तित्व के लिये यही तर्क दिया है।

व्यावहारिक युक्ति (Pragmatic proof)—अमेरीका के दार्शनिक जेम्स का मत है कि ईश्वर के विश्वास से मनुष्य को बल एवं आत्मसंतोष प्राप्त होता है। इसलिए ईश्वर का अस्तित्व अवश्य है।

धार्मिक अनुभूति—धार्मिक विचारक प्रमाण देते हैं कि अनेक दिव्य पुरुषों को जैसे—तुलसी, मीरा, रसखान, विवेकानन्द, रामतीर्थ, ईसा आदि को ईश्वर का साक्षात् अनुभव हुआ है। इसलिए ईश्वर है।

नकार में स्वीकार का प्रमाण—जब कोई पूछता है कि कमरे में कौन है? और व्यक्ति उत्तर देता है कि यहां कोई नहीं। तो इसका अर्थ यह नहीं कि वास्तव में कोई नहीं। कम से कम उत्तर देने वाला तो है। यदि कोई कहे कि ईश्वर नहीं है तो भाव इतना ही है कि उसे ईश्वर का ज्ञान नहीं हुआ अथवा अनुभूति नहीं हुई। यदि वह अपने ही व्यक्तित्व की खोज करे तो उसे अपने अन्तर में ही नारायण मिल जाय।

आस्तिक-नास्तिक विवाद—एक आस्तिक और एक नास्तिक रात्रि को देर तक ईश्वर को सिद्ध एवं असिद्ध करने के लिये तर्क-वितर्क करते रहे। आधी रात को दोनों ने निश्चय किया कि शेष शास्त्रार्थ कल करेंगे। दूसरे दिन प्रातः आस्तिक ने नास्तिक को कहा—अरे भाई! तुम्हारे तर्क इतने जोरदार थे जिनसे प्रभावित होकर मैंने अपनी सारी पुस्तकों को जला दिया। इस पर नास्तिक ने कहा—अरे, यह बहुत अनर्थ हुआ। मैं तो आपके तर्कों से प्रभावित होकर अपनी नास्तिकता का पुस्तकालय जला कर आया हूं।

आलोचना—जड़ और चेतन दोनों को सत् मान लेने से यह समस्या बन जाती है कि क्या दोनों समान रूप से स्वतंत्र महत्त्व के हैं या एक-दूसरे के अधीन। पर जड़ और चेतन दोनों को अलग-अलग स्वतंत्र सत्ता मानने से विश्व में दो शक्तियों का शासन बन जाता है जिससे इस विश्व (Universe) में एक शक्ति का शासन नहीं रहता है। दो सत्ताओं का शासन हो तो एक शासन के वैज्ञानिक सिद्धान्त एवं नैतिक नियम से दूसरे शासन के वैज्ञानिक सिद्धान्त एवं नैतिक नियम परस्पर विरोधी और भिन्न भी हो सकते हैं। इस दो सत्ता से जगत् में अव्यवस्था फैल जायेगी। यदि घर में ही माता का अनुशासन एवं पिता का अनुशासन परस्पर भिन्न और विरोधी हो तो परिवार कुछ दिनों में उजड़ जायगा।

जब जड़ और चेतन दोनों परस्पर विरोधी प्रकृति के हैं तब दोनों में सम्बन्ध स्थापित हो, यह कैसे सम्भव है। सांख्य दर्शन इसमें उपमा का प्रयोग करता है। अन्धे और लंगड़े का, या गाय और बछड़े का। ये उपमा अपर्याप्त है क्योंकि ये दोनों उदाहरण ही सजीव हैं, चेतनता के हैं। अतः द्वैत के आधार पर सृष्टि की संतोषजनक व्याख्या नहीं हो सकती।

द्वैतवाद नैतिकता का आधार नहीं बन सकता। जब तक द्वैत है, गैर-पने का, पराये-पन का भाव है तब तक दूसरे की खैर नहीं। दूसरेपन, पराये-पन के आधार पर ही लूट-खसोट, बेईमानी, बलात्कार, अत्याचार का आधार बनता है।

नये शोध में जड़-चेतन का अन्तर शेष नहीं बचता। जो चेतना पत्थर में सोयी हुई, पशुओं में ऊँघ रही है, वह मनुष्य में जाग्रत् है। इसे जगदीशचन्द्र वसु ने प्रयोगों के द्वारा सिद्ध कर दिखाया।

आज का शोध जड़ को जड़ के रूप में नहीं बताता। उसके अन्दर ऊर्जा समायी हुई है। इसलिए बर्ट्रेंड रसेल कहता है जिन ईंटों पर जड़वाद का महल खड़ा था वह ईंट ही कच्ची प्रमाणित हुई।

इस प्रकार द्वैतवाद जीव-जगत् की संतोषजनक व्याख्या करने में असमर्थ सिद्ध होता है।

चैतन्यवाद

(1) चरम सत्ता का स्वरूप—दर्शन की आधारभूत समस्या है कि विश्व की चरम सत्ता का स्वरूप क्या है? मोटे तौर पर देखने से मनुष्य को अपने पिण्ड में और ब्रह्माण्ड में दो प्रकार की शक्तियों का खेल दृष्टिगोचर होता है। एक जड़ दूसरी चेतन। एक घूर और दूसरी नूर, एक मृण्मय दूसरी चिन्मय, एक क्षेत्र दूसरी क्षेत्रज्ञ। आंग्ल भाषा में दार्शनिक इसे Mind और Matter नाम से पुकारते हैं। इसे ही गीता में देह और देही (आत्मा) नाम से पुकारा गया है। शरीर जड़ मिट्टी का पुतला है पर इसके भीतर जो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा इनसे परे ज्ञान चेतना है वे सब चैतन्य का ही खेल हैं।

(2) जड़ एवं चेतन—द्वैतवादी दार्शनिक मानते हैं कि जड़ और चेतन दोनों सत् हैं। इसे Dualism कहते हैं। भारत में मध्वाचार्य एवं पश्चिम में देकार्त इसके प्रसिद्ध दार्शनिक हैं।

(3) जड़ या चेतन—जड़ व चेतन दोनों को सत् मान लेने से यह समस्या बच जाती है कि क्या दोनों समान रूप से स्वतंत्र महत्त्व के हैं या एक-दूसरे के अधीन।

यदि जड़ और चेतन दोनों अलग-अलग स्वतंत्र सत्तायें हैं तो विश्व में दो शक्तियों का शासन बन जाता है जिससे इस विश्व (Universe) में एक शक्ति का शासन नहीं रहता। यदि विश्व में सर्वोच्च सत्ता एक है तो हमें यह निर्णय करना पड़ेगा कि क्या वह जड़ है या चेतन। या तो जड़ चेतन की व्याख्या करे या चेतन जड़ की व्याख्या करे तभी यह फैसला हो सकता है कि दोनों में अन्तिम सत्ता कौन-सी है। जड़ तो स्वयं ज्ञानशून्य जड़ ही है वह स्वयं को भी नहीं जानता। अन्य जड़ों को और चेतन को भी नहीं जानता। अतः विश्व व्याख्या में असमर्थ है। चेतन जड़ को भी जानता है, दूसरे जड़ों को भी जानता है। जड़ और चेतन के सम्बन्ध को जानता है और स्वयं को जानता है। अतः चेतन ही अन्तिम सत्ता की व्याख्या कर सकता है।

चैतन्यवाद की परिभाषा—चैतन्यवाद वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार विश्व की अन्तिम सत्ता का स्वरूप चेतन आत्मा है।

चैतन्य की मान्यतायें—(क) विश्व का मूल तत्त्व चेतना ही है।

(ख) चेतन तत्त्व निराकार, निर्विकार और अमूर्त है। जाके मुंह माथा नहीं, नाहि रूप और कुरूप। पुहुप बास (सुगंधि) पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप।। (उपमा से परे)। चेतन तत्त्व जड़ पदार्थों के समान देश-काल में फैला हुआ नहीं है।

(ग) जड़ या तो अवास्तविक है या प्रातिभासिक है या चेतन तत्त्व का ही व्यक्त रूप है।

(i). बंध्या सुत के विवाह के भोज में कलकत्ते के रसगुल्ले खाये। (अवास्तविक)

(ii) रज्जु में सर्प समझ कर डरना (प्रातिभासिक)। स्वप्न में राजा का कंगाल हो जाना। स्वप्ने होय भिखारि नृप, रंक नाकपति होय। जागे हानि न लाभ कछु तिमि प्रपंच जग जोय।।

(iii) शरीर का जीवन एवं इन्द्रियों का प्रकाश न शरीर का है न इन्द्रियों का, सिर्फ आत्मा का ही प्रकाश है।

4. जड़ शक्ति और जीवन—दोनों ही चैतन्य शक्ति से सम्बन्धित और उस पर निर्भर है।

5. विश्व एक जड़ मशीन या यंत्र के समान नहीं है। इसका कोई प्रयोजनपूर्ण उद्देश्य है। सृष्टि का संचालन किसी दिव्य ईश्वरीय शक्ति द्वारा किसी महान् प्रयोजन के लिये हो रहा है। इसी प्रकार मानव जीवन भी प्रयोजनपूर्ण है। न विश्व में मनमानी अराजकता है और न मानव जीवन निरर्थक है। विश्व लोक कल्याण के लिए परम प्रभु का एक विराट् यज्ञ है और मानव जीवन परम प्रभु की प्राप्ति के लिये एक दिव्य साधना है।

6. परम तत्त्व को न इन्द्रिय ज्ञान द्वारा पूर्ण रूप से जाना जा सकता है, न मन से उसकी कल्पना की जा सकती है, न वाणी से उसका कथन किया जा सकता है और न बुद्धि ही उसको पूर्ण रूप से जान पाती है। उसे केवल आध्यात्मिक अनुभूति द्वारा ही जाना जा सकता है।

चैतन्यवाद के पक्ष में युक्तियां—मूल तत्त्व वही है जो सार्वकालिक, सार्वदेशिक, सार्वजनीन एवं सर्वरूप हो। केवल क्षणिक और परिवर्तनशील वस्तु या घटना को मूल तत्त्व नहीं कहा जा सकता है। तथ्य और सत्य में अन्तर स्पष्ट है—

तथ्य	**सत्य**
तथ्य एकदेशीय वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना होती है। यह देश	सत्य सार्वदेशिक वस्तु, व्यक्ति या घटना को कह सकते हैं। जांच

(Space) में आबद्ध होता है। देश इसे सीमित बनाता है। भौतिक वस्तु एकदेशीय होती है क्योंकि उसकी परिभाषा है जो वजन रखे और स्थान घेरे। उदाहरणस्वरूप फूल, डॉ. अब्दुल कलाम, मंत्रियों द्वारा शपथ ग्रहण।

तथ्य एकदेशीय सत्य है। एक स्थान में सुख तो दूसरे स्थान पर इसके विपरीत दुःख।

तथ्य सार्वकालिक न होकर किसी एक काल विशेष की सीमा में आबद्ध होता है। वह काल से घिरा होता है। इसलिए काल उसे खा जाता है। इसलिए तथ्य क्षणिक परिवर्तनशील और नश्वर होता है। जैसे रामनवमी उत्सव, जे.पी. आन्दोलन, शरीर, राजा ययाति का यौवन।

करने पर कोई वस्तु सार्वदेशिक नहीं हो सकती। कोई भी व्यक्ति एक ही समय में सब स्थानों पर नहीं हो सकता है। कोई घटना भी एक ही समय सभी स्थानों पर नहीं घट सकती। केवल चेतन तत्त्व ही सार्वदेशिक, सर्वव्यापक है।

अत्र सत्यम् तत्र सत्यम् यत्र सत्यम् और सर्वत्र सत्यम्—जो सभी स्थानों में सत्य है।

सत्य सार्वकालिक होता है। किसी काल विशेष की सीमा में आबद्ध नहीं। **आदि सत्यम् युगादि सत्यम् भवति सत्यम् भविष्यति सत्यम्–** सत्य सब कालों में, काल के तीनों विभागों भूत, वर्तमान, भविष्य में सदा एकरस बना रहता है। इसलिए काल उसे खा नहीं सकता। इसी कारण उसे अकाल भी कहते हैं। सत् श्री अकाल का यही अर्थ है कि वह अकाल पुरुष या तत्त्व जिसे काल खा नहीं सकता, वही सदा सत्य है। शरीर नित्य बदलता रहता है। गर्भ में शुक्र का कीड़ा जन्म में छोटा-सा शिशु, बालपने में चंचल बालक, किशोरावस्था में क्रीड़ा-कौतुक करने वाला विद्यार्थी, यौवन में गृहस्थ आश्रम का प्रवेशार्थी, प्रौढ़ावस्था में गृहस्थी का बोझा ढोने वाला, वृद्धावस्था में जीवन की ठोकरों एवं रोगों से जर्जर। किन्तु इन सारी बदलने वाली अवस्थाओं के भीतर मनुष्य की चेतना अखण्ड एवं अपरिवर्तनीय रहती है। यानी शरीर बदलता रहता है पर शरीर में स्थित मैं तत्त्व कभी नहीं

बदलता। जो मैं तत्त्व बचपन में था वही अन्त तक बना रहता है।

तथ्य एक रूप या कुछ रूप होता है। यानी वह दूसरी वस्तु या रूप से कट जाता है।

सत्य सर्वरूप होता है। वही सभी में अनुस्यूत होता है। अतः वह किसी दूसरी वस्तु या रूप से नहीं कटता। इसलिए उपनिषदों में एक को जानने से सबको जानने की प्रतिज्ञा है।

तथ्य सार्वजनीन न होकर एकजनीन अर्थात् किसी व्यक्ति विशेष या कुछ व्यक्तियों या वस्तुओं से सम्बन्धित यानी सीमित होता है। जैसे सुशीलजी का विवाह, इन्दिराजी की हार, जनता पार्टी की विजय।

सत्य सार्वजनीन होता है। सूर्य का प्रकाश बिना भेद-भाव के सबको ज्योति देता है। सत्य पर एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों का एकाधिकार नहीं है।

परम तत्त्व वही है जो सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सर्वरूप एवं सार्वजनीन सत्य हो। विचार करने पर वह तत्त्व चेतन आत्मा ही है।

चैतन्यवाद के पक्ष में दूसरी युक्ति अनुभववाद—पाश्चात्य दार्शनिक बर्कले (Berkley) के अनुसार मनुष्य के ज्ञान का एकमात्र साधन अनुभव है। यदि अनुभव न हो तो हमें सत्य का ज्ञान कभी नहीं हो सकेगा। सारा ज्ञान किसी न किसी के अनुभव पर निर्भर है। विश्व सत्ता बाहर नहीं है वरन् वह हमारे अनुभव पर ही आधारित है। जब भौतिकवादी कहता है कि जड़ पदार्थ सत्य है तो यह ज्ञान भी किसी के अनुभव की उपज है। अतः अनुभूति का महत्त्व वस्तुओं की सत्ता से पहले है। जब हम किसी फूल का अनुभव करते हैं तो भिन्न-भिन्न इन्द्रियों से उसके रूप, रंग, सुगन्धि, कोमलता, वायु में फड़फड़ाहट की ध्वनि आदि इन्द्रिय अनुभव मस्तिष्क को ज्ञात होते हैं। मस्तिष्क अपने पिछले अनुभव के आधार पर अर्थ लगाता है कि यह फूल है। अब व्यक्तिगत मन सीमित होने के कारण सदा ठीक अर्थ नहीं लगा सकता। इसलिए मन की चेतना से ऊपर एक विश्वव्यापी चेतना है जिसे विश्व मानस या Universal mind भी कहा जाता है। इसी विश्वमन को परमात्मा कहते हैं।

3. विश्व मानस या विश्व चेतना—भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के मन में जो व्यक्तिगत चेतना है वह दूसरों से अलग-अलग तथा नितान्त असम्बद्ध नहीं है। सभी की चेतना मूलतः विश्व चेतना से जुड़ी हुई है। यदि ऐसा न होता तो व्यक्ति का मन दूसरे के मन का सद्भाव अथवा दुर्भाव कभी न जान सके। तब मित्रता,

बंधुभाव, निष्ठा, विश्वास, श्रद्धा आदि सद्गुण असम्भव ही रहते तथा मानव का मानव से व्यवहार ही असम्भव हो जाता है। जैसे कमरे में बैठे व्यक्ति की दृष्टि सीमित है। मैदान वाले की दृष्टि अधिक विकसित और पहाड़ी की चोटी वाले की दृष्टि बहुत खुल जाती है। उसी प्रकार विश्व चेतना की ओर ज्यों-ज्यों हम विकसित होते जाते हैं त्यों-त्यों हम अधिक से अधिक लोगों के मन के भावों को जानने में समर्थ होते जाते हैं। ऐसी आध्यात्मिक साधना से योगी त्रिकालदर्शी बन जाते हैं तथा भविष्यत् में घटने वाली घटना को पहले से ही जानकर भविष्य-कथन कर सकते हैं।

विश्व चेतना की सिद्धि हेतु तीन साधन—व्यक्तिगत चेतना से विश्व चेतना तक विकसित होना यही जीवन की मोक्ष साधना है। इसके लिए साधन क्या है? मनुष्य यदि अपनी चेतना का विश्लेषण करे तो उसमें चेतना की मुख्य तीन प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं—

(क) ज्ञानात्मक प्रवृत्ति,

(ख) रागात्मक प्रवृत्ति,

(ग) संकल्पात्मक प्रवृत्ति।

हर चेतन प्राणी कुछ न कुछ जान रहा है या सुख-दुःख का अनुभव कर रहा है और कुछ कर्म के लिए संकल्प कर रहा है। इसी के अनुसार मोक्ष प्राप्ति के तीन साधन बन जाते हैं—

(क) ज्ञानयोग—Know the Perfect पूर्ण को जानो। मनुष्य के अन्दर जिज्ञासा है वह जानना चाहता है। ज्ञानयोग का कथन है ज्ञान साधना में तब तक मत रुको जब तक पूर्ण को न जान लिया जाये।

(ख) भक्तियोग—Feel for the Perfect पूर्ण के लिए हर्ष-विषाद, सुख-दुःख अनुभव करो। अमर वस्तु के वियोग में दुःख मानो और अमर वस्तु के संयोग में सुख मानो—

'हे री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दर्द न जाना कोय।'
'पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।'

हृदय से पाना भक्ति योग है। भक्तियोग हृदयवान एवं भावनाशील लोगों के लिये है।

(ग) कर्मयोग—Act for the Perfect पूर्ण के लिये कर्म करो। हम कर्म करते हैं मरने वाले लोथड़ों के लिये। यदि हम लोक व्यवहार में अपने समस्त कर्तव्यों का पालन भागवत बुद्धि से करते हैं तो लोक व्यवहार भी सुन्दर होगा, कर्म की फांसी हमें संसार के बंधन में डाल नहीं सकेगी तथा कर्म के फूलों से

भगवान् की पूजा भी हो जायेगी। यह निष्काम कर्मयोग नर की सेवा को नारायण की पूजा में रूपान्तरित कर देता है।

गति → क्रिया → कर्म → कर्तव्य → निष्काम कर्म → धर्म → प्रभु प्राप्ति।

4. पांचवीं युक्ति—विश्व का ज्ञान तभी सम्भव है जब वह ज्ञान की प्रक्रिया के अनुकूल हो। ज्ञान की प्रक्रिया में ज्ञाता चाहिये। कुछ ज्ञेय वस्तु चाहिये जिसे ज्ञाता जानना चाहता है। फिर ज्ञाता और ज्ञेय के बीच ज्ञान का सम्बन्ध चाहिये। जब तीनों की प्रकृति एक जैसी हो तभी ज्ञान सम्भव है। जब विश्व बोधगम्य है तभी उसे कोई ज्ञाता जान सकता है तभी यह सिद्ध होता है कि यह ज्ञेय विश्व भी ज्ञान के स्वरूप का ही है। ज्ञान की सम्भावना और विश्व की बोधगम्यता यह सिद्ध करती है कि विश्व भौतिक न होकर चेतनस्वरूप का है। इसलिए हमारी चेतना में समा सकता है। The same spirit sleeps in a stone, dreams in an animal and awaken in man. वही आत्मा जड़ में सोयी हुई है, पशुओं में सपने लेती है वही आत्मा मनुष्यों में जाग उठती है। जड़ पदार्थ के अन्तर्गत भी चेतन सत्ता वर्तमान है तभी न हम जगत् को भौतिक या जड़ होते हुए भी जान लेते हैं। क्योंकि ज्ञाता और ज्ञेय में तालमेल हुए बिना ज्ञान कैसे हो सकता है? अतः निश्चित ही जड़ के अन्दर चेतन तत्त्व समाया हुआ है।

विश्व में एक नैतिक प्रयोजन है (प्रयोजनवाद)। सृष्टि में कुछ भी निष्प्रयोजन नहीं है। सृष्टि में सृष्टिकर्ता का महान् प्रयोजन निहित है। बच्चे के जन्म के साथ मां के स्तनों में दूध आ जाता है और बच्चे के दांत आने पर मां का दूध सूख जाता है। मनुष्य को ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। वृक्ष ऑक्सीजन छोड़ते हैं। मनुष्य का त्यागा हुआ वायु वृक्ष का भोजन है। मनुष्य के द्वारा त्यागा हुआ मैला खेत के लिये खाद है। इस तरह सृष्टि के पग-पग पर एक व्यवस्था, एक प्रयोजन स्पष्ट दीखता है।

छठी युक्ति—चिरंतनवाद, शांकरमत—मूल तत्त्व वही है जो चिरंतन है, सर्वव्यापक है। शुद्ध सत्ता चेतन है। वह स्वयं प्रकाश या स्वयं ज्योति है। केवल स्वयं प्रकाश ही अपने को प्रकट कर सकता है। जड़ अपने को कभी प्रकट नहीं कर सकता।

शंकराचार्य ने कहा है—ज्यों-ज्यों हम अपने अस्तित्व पर संदेह करते हैं त्यों-त्यों और भी पुष्ट होता है कि हम अवश्य हैं। क्योंकि संदेह सिद्ध करता है कि कोई संदेह करने वाला अवश्य होना चाहिए।

इसी बात को फ्रांस के देकार्ते ने कहा—

Cogito ERGO Sum

I know, therefore I am

मैं जानता हूं इसलिए मैं अवश्य हूं।

मैं संदेह करता हूं अतः मैं अवश्य हूं।

जितना अधिक मैं अपने अस्तित्व पर संदेह करता जाता हूं उतना ही मेरा अस्तित्व पुष्ट होता जाता है। अतः मानव की चेतन सत्ता ही विश्व की अन्तिम सत्ता है। मैं हूं तभी सच्चा या झूठा ज्ञान प्राप्त होता है। अगर मैं ही नहीं रहूंगा तब कैसे ज्ञान प्राप्त करूंगा।

आस्तिक तथा नास्तिक—भारतीय दर्शन में आस्तिक का अर्थ है वह विचारधारा जो वेदों को अन्तिम प्रमाण मानती है यथा षड्-दर्शन। नास्तिक वह जो वेदों को अन्तिम प्रमाण नहीं मानते—यथा बौद्ध, जैन और चार्वाक दर्शन।

रूढार्थ (लोक प्रचलित अर्थ) में आस्तिक का अर्थ है वह व्यक्ति या विचारधारा जो ईश्वर में विश्वास करे। नास्तिक वह माना जाता है जो ईश्वर की सत्ता में विश्वास न करे।

अध्यात्मवाद में आस्तिक का अर्थ है जो स्वयं में (आत्मा में) विश्वास करता है।

नास्तिक का अर्थ है जिसमें आत्मविश्वास ही न हो।

स्वामी विवेकानंद कहते हैं—पुराने धर्म कहते थे नास्तिक वह है जो ईश्वर में विश्वास नहीं करते। नया धर्म (वेदान्त) कहता है नास्तिक वह है जो स्वयं में विश्वास नहीं करता।

मैं के सिद्ध होते ही परमात्मा भी सिद्ध हो जाता है।

बौद्ध दर्शन—सर्वं क्षणिकम् All is change

शंकराचार्य—यह किसने जाना कि सब कुछ क्षणिक है?

बौद्ध—यह भगवान् बुद्ध ने जाना।

शंकराचार्य—यदि शरीरधारी बुद्ध ने जाना तो वे स्वयं काल से सीमित थे, वे जन्म-मरण वाले थे। उनकी चेतना क्षणिक थी। विश्व की अनादि-अनन्त सत्ता के विषय में वह कैसे जान सकता है, जो अल्पजीवी है। उसके जन्म के पहले के बारे में वह कैसे जान सकता है तथा मृत्यु के उपरान्त का सत्य कैसे जान सकता है।

यदि 30 मील की दौड़ का खेल हो जिसमें 15 खिलाड़ी दौड़ने वाले हैं और निर्णायक महोदय स्वयं पांच मील दौड़कर, हांफकर गिर जाने वाले हैं तो कौन निर्णय करेगा कि कौन जीता, कौन प्रथम आया। निर्णायक को दौड़ के आदि में रहना चाहिये, बीच में भी उपस्थित रहना चाहिये तथा अन्त में भी। अन्यथा निर्णय नहीं हो सकता।

इसी प्रकार सृष्टि की दौड़ खरबों वर्ष पुरानी है और जब तक सृष्टि रहेगी यानी अन्त तक देखने वाला होगा तभी न कोई दावा कर सकता है कि चेतना क्षणिक है।

क्षणिक चेतना वाला अनादि-अनन्त शाश्वत सत्ता को नहीं जान सकता। परम सत्ता को वही जान सकता है जिसे शाश्वत चेतना हो।

यदि शरीरधारी बुद्ध को क्षणिक चेतना का ज्ञान है कि सब कुछ बदलने वाला है तब तो उसका हम कोई भरोसा नहीं कर सकते। हम जितना ऊंचा ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं उसके लिए उतना ही ऊंचा या पक्का ज्ञाता भी चाहिये। सारा ज्ञान किसी न किसी ज्ञाता का ही साक्ष्य है। ज्ञाता विश्वसनीय नहीं तो उसका जाना हुआ ज्ञान अज्ञान ही है। ज्ञान के अनुपात में ज्ञाता चाहिए। अगर कोई डॉक्टर सूर्य का तापमान थर्मामीटर से मापने चले तो थर्मामीटर सहित डॉक्टर भी पिघल जायेगा। अतः सूर्य की शक्ति मापने के लिए सूर्य से बड़ा शक्तिशाली या उसके समान तेज वाला चाहिये।

ज्ञाता भी विश्वसनीय चाहिये तभी विश्वस्त ज्ञान प्राप्त कर सकता है। कोई कहे अमुक स्थान में बीस पैर वाला दैत्य देखा, पर आंख का डॉक्टरी परीक्षण करने पर पाया गया कि उसकी आंख ही खराब है। इसलिए

यदि ज्ञाता झूठा है तो ज्ञान झूठा

यदि ज्ञाता कच्चा है तो ज्ञान कच्चा

यदि ज्ञाता नश्वर है तो ज्ञान नश्वर

बौद्ध—भगवान् बुद्ध के शरीर ने नहीं उनकी आत्मा ने जाना कि सब कुछ क्षणिक है।

शंकराचार्य—तब बुद्ध आत्मा के रूप में शाश्वत हैं क्षणिक नहीं। तब भी सिद्ध होता है कि क्षणिक के पीछे एक शाश्वत सत्ता है। वही आत्मा या परमात्मा है।

इस पर रामकृष्णदेव एक कथा कहा करते हैं —

एक नमक की पुतली नमक का डण्डा लेकर समुद्र की थाह (गहराई) नापने गई। और वह समुद्र में ही घुल-मिल गई यानी समा गई। जो स्वयं ही समुद्र में विलीन हो गई वह समुद्र की गहराई कैसे बता सकती है?

गई पूतरी नौन की थाह सिन्धु को लेन।
गल वह सिन्धु ह्वै गई, कहे कौन अब बैन।। (बैन-वचन)

क्षणिक की कोई हिम्मत नहीं कि अनन्त की थाह पा सके। चेतन ही चेतन को जानता है। आत्मा ही परमात्मा को जानता है। मैं के आत्मा सिद्ध हो जाने पर

परमात्मा अपने आप सिद्ध हो जाता है। जब नास्तिक कहता है—मैं कहता हूं कि ईश्वर की सत्ता नहीं है। तब विवेकानन्द उससे पूछते हैं—क्या तुम्हारी अपनी सत्ता भी है या नहीं। अपनी सत्ता स्वीकारते ही परमात्मा की सत्ता स्वतः सिद्ध हो जाती है। यदि तुम में क्षणिक चेतन है तो तुम्हारा कथन ही गलत है। यदि तुम्हारा मैं शाश्वत चेतन है तब वही शाश्वत चेतन ही आत्मा है या परमात्मा है। तब तुम्हारे उसकी सत्ता से इनकार करने पर भी वह सिद्ध हो रहा है।

पाश्चात्य चेतनवादी दार्शनिकों को पहले आत्मा का विचार वहां के यूनानी दार्शनिकों की विचारधारा में नहीं आया इसलिए थेल्स जल को, तो Heraclites अग्नि को परम सत्य मानते रहे। सर्वप्रथम आत्मा का विचार पाइथोगोरस में प्राप्त होता है। वह ईसा से लगभग 532 वर्ष पूर्व हुआ। अर्थात् वे भगवान् बुद्ध के समकालीन दार्शनिक थे।

संस्कृत के आत्मा शब्द को पाली भाषा में अत्ता एवं अत्तो भी लिखा या बोला जाता है। इसी से ग्रीक (यूनानी) एवं लैटिन भाषा में Auto शब्द बना है जिसका अर्थ भी वही है Self स्वयं, आत्मा, खुद। आत्मा → अत्ता → अत्तो Auto और Auto से ही Automatic आत्मचालित—स्वचालित Autonomous आत्मनामी (स्वतंत्र) Automobile स्वयंचाली, आत्मचाली Autocrat आत्म (अहं) शासी।

पाइथोगोरस को भारतीय पुराण इतिहास में पृथ्वीगुरु नाम से लिखा है। इतिहासकार मानते हैं कि पाइथोगोरस भारत की यात्रा पर आया था तथा भारत से अध्यात्म शिक्षा प्राप्त करके यूनान लौटा था। ज्यामिति में जो Theoram of Pythogoras प्रसिद्ध है, वह भी उसने भारत से सीखी थी क्योंकि पाइथोगोरस से बहुत पहले वही बोधायन के सुल्व सूत्रों में लिखित थी।

पाइथोगोरस के पश्चात् सुकरात (ईसा से 399 वर्ष पहले) ने भी आत्मा की चर्चा की। उसके काल में कुछ भारतीय दार्शनिक यूनान में पहुंच गये थे जिनके साथ सुकरात का आध्यात्मिक विषयों पर विचार-विमर्श हुआ। सुकरात ने कहा Knowledge is Power ज्ञान ही सबसे बड़ी शक्ति है। उसने भारतीय उपनिषदों के आत्मानां विद्धि के अनुरूप कहा—"Know Thyself' अपने आपको जानो। सुकरात के पश्चात् उसके शिष्य प्लेटो हुए। जो पश्चिम में चैतन्यवाद के महानतम विचारक माने जाते हैं। प्लेटो ने कहा कि चरम सत्य भौतिक प्रकृति का नहीं है, वरन् वह भौतिक विचार की प्रकृति का है। विचार को अंग्रेजी में Idea कहते हैं। उसीसे प्लेटो की विचारधारा का नाम Idealism पड़ गया। इस Idealism शब्द का Ideal (आदर्श) से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह लोगों की मुख टकसाल Idea से Idealism नाम चल पड़ा। प्लेटो कहता है जितने मनुष्य देखते हैं, जानते हैं वे

सब व्यक्तिविशेष हैं जिनके भिन्न-भिन्न नाम एवं रूप हैं। इन सबको मिलाकर हम एक सामान्य मनुष्य का विचार बनाते हैं। वह सामान्य मनुष्य (General man) केवल एक Idea (विचार) ही है। जब हम कहते हैं मनुष्य नश्वर है तब हम किसी व्यक्तिविशेष की बात नहीं कह रहे जो विशेष नामधारी, विशेष रूप वाला, स्थान वाला, कुल वाला व्यक्ति है। Man (मानव) एक Idea जिसे किसी ने देखा-सुना नहीं पर सबने उसका विचार किया है।

Ram is Mortal
Shyam is Mortal } Percept
Mohan is Mortal

Therefore Man is Mortal—Concept

राम, श्याम, मोहन आदि दिखते हैं, Percept हैं। इन्द्रियों से इन्हें जान सकते हैं पर मनुष्य को नहीं। मनुष्य Concept है, विचार शुरू होता है Concept से Idea से।

राम, श्याम, मोहन, सोहन Percept है।

Man या सामान्य मनुष्य Concept है।

Man (Concept) में वे सब मनुष्य सम्मिलित हैं, जो पहले हो चुके हैं। वे भी शामिल हैं जो वर्तमान में हैं और वे भी सम्मिलित हैं, जो कि भविष्य में होंगे। विचार के लिये हम कहते हैं Man is Mortal किन्तु सत्यता यह है कि This Man That Man तो मरता है परन्तु General Man जो विचार है वह नहीं मरता। इसी कारण प्लेटो के दर्शन को Idealism कहा जाता है। अमेरीका के विचारक Emerson ने प्लेटो के यश में लिखा है 'Plato is Philosophy & Philosophy is Plato.' पश्चिम में अन्य महान् चैतन्यवादी दार्शनिक हुए हैं— Berkley, Leibnitz, Kant, Hegal, Fichte, Scheling, Schobenhauel, Bradley, Croce, Gentile, Green, Mactaggart, Royce आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

चैतन्यवाद के मुख्य तीन रूप हैं—

(क) Objective वस्तुनिष्ठ चैतन्यवाद

(ख) Subjective आत्मनिष्ठ चैतन्यवाद

(ग) Absolute Idealism निरपेक्ष चैतन्यवाद

ज्ञानशास्त्र की दृष्टि से Idealism (चैतन्यवाद) के दो रूप माने जाते हैं—

A. Metaphysical idealism (तात्त्विक चैतन्यवाद)

B. Epistemology

वस्तुनिष्ठ चैतन्यवाद—इसका कथन है चेतना वस्तुओं के समान सामने प्रकट सत्ता है। वह हमारे मन पर, कल्पना पर, हमारे व्यक्तिगत चिन्तन पर निर्भर नहीं है। यदि सत्य है और उसका कोई ज्ञाता नहीं है तब भी वह वस्तुनिष्ठ सत्ता Objective Reality है ही। जैसे फूल एक वस्तु है। चाहे कोई देखे न देखे, चाहे किसी की रुचि हो न हो, चाहे किसी की आँख में रोशनी हो या न हो, चाहे देखने में समर्थ हो या न हो, फूल तो फूल ही है। इसे एक वस्तु सत्ता (an objective reality) कहते हैं।

इसी प्रकार चेतना एक Objective Reality (वस्तुनिष्ठ सत्ता) है, वह किसी के जानने, मानने या कल्पना करने पर निर्भर नहीं है। ईश्वर की सत्ता है। कोई जाने न जाने, माने न माने, ईश्वर की सत्ता तो है ही। किसी के मानने या न मानने से तो उसकी सत्ता या अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता। उसकी सत्ता तो है ही, चाहे उसे कोई जान सके या नहीं।

प्लेटो वस्तुनिष्ठ चैतन्यवादी है। यह व्यक्ति या वह व्यक्ति राम, मोहन, सोहन, श्याम आदि व्यक्तिविशेष हैं। वे इन्द्रियों से गोचर होने वाले जीव हैं। उनको मिलाकर जो सामान्य मानव का विचार है, वह एक विचार है जो अलग-अलग व्यक्तिगत मानव की अपेक्षा अधिक स्थायी है। वास्तव में 'मानव' ही शाश्वत है, यह मनुष्य या वह मनुष्य शाश्वत नहीं।

प्लेटो के मत में इस मानव को केवल कल्पना मात्र या बुद्धि का खेल नहीं माना जा सकता। वह एक वस्तुनिष्ठ सचाई है। व्यक्तिगत वस्तुओं (Percept) के मिलान से हम सामान्य जाति प्रत्यय (Concept) बनाते हैं। Ram, Shyam, Mohan इन्द्रियगोचर है किन्तु Man एक जाति प्रत्यय है Concept है। कुछ जाति प्रत्यय अधिक व्यापक हैं और कुछ कम हैं। इस प्रकार जाति प्रत्ययों का एक तारतम्य है—कम व्यापक, अधिक व्यापक, और अधिक व्यापक और सर्वव्यापक।

राम, श्याम, मोहन—कम व्यापक

मानव जाति—अधिक व्यापक

प्राणीमात्र—और अधिक व्यापक

पूर्ण कल्याण, पूर्ण श्रेयस् का विचार (Idea of complete goodness) Summum Bonom. (God)

वस्तुनिष्ठ चैतन्यवाद की आलोचना—प्लेटो के अनुसार विश्व का आधार जाति प्रत्यय है। वे ही सत्य हैं। उनके अतिरिक्त कुछ नहीं। प्रश्न है कि जड़ जगत् की उत्पत्ति कहां से हुई। प्लेटो का कथन है कि जड़ पदार्थ जाति प्रत्ययों की

अपूर्ण छाया मात्र है। जड़ और चेतन की व्याख्या संतोषजनक प्रतीत नहीं होती। प्लेटो ने जड़ जगत् को मिथ्या नहीं माना। उसके अनुसार जड़ पदार्थ भी जीवन के आदर्श हो सकते हैं। इससे प्लेटो के दर्शन में द्वैतवाद का दोष आ जाता है। शुद्ध चैतन्यवाद नहीं रहता। प्लेटो के अनुसार सामान्य प्रत्ययों की संख्या अनेक हैं जिनमें एक श्रृंखला है। प्लेटो सभी को सत्य मानते हैं। इस तरह सत्य अनेक हो जायेंगे और एक सत्य की अपेक्षा दूसरा सत्य अधिक व्यापक मान लेने से छोटा सत्य सापेक्ष रह जाता है। वस्तुनिष्ठ सत्ता से नहीं। फिर अनेक प्रत्ययों का सर्वोच्च प्रत्यय का परम कल्याण से क्या सम्बन्ध है? यह भी स्पष्ट नहीं होता।

आत्मनिष्ठ चैतन्यवाद—(Subjective Idealism) इस विचारधारा के अनुसार विश्व की अन्तिम सत्ता चेतना है। पर वह पूर्ण रूप से हमारे अनुभव पर अवलम्बित है। बिना ज्ञाता के ज्ञान हो ही नहीं सकता। इंग्लैण्ड के दार्शनिक Berkley ने अनुभव का विश्लेषण करके यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य को जड़ वस्तु का कभी भी अनुभव नहीं होता। जब भी अनुभव होता है तो कुछ गुणों का। उदाहरणार्थ जब हम खाण्ड (चीनी) की कल्पना करते हैं हमारे ध्यान में उजलापन, मिठास, चूर्णता आदि गुणों का अनुभव होता है। चीनी इन्हीं समूहों का नाम है। अतः जड़ वस्तुयें हमारे मन के अनुभूत गुणों का समूह मात्र ही है। इस तरह जड़ वस्तुओं का अस्तित्व गुणों पर निर्भर है तथा गुणों का अस्तित्व हमारे मन के गुणों पर निर्भर है। यदि अनुभव नहीं तो गुण नहीं और गुण नहीं तो वस्तुयें नहीं। इसलिए व्यक्ति की चेतना ही है जो उसकी अनुभूति में प्रकट होती है। वही विश्व की चरम सत्ता है। अनुभूति से बाहर कोई सत्ता नहीं।

आलोचना—बर्कले ने जड़ पदार्थों को केवल अनुभूत गुणों का समूह माना है। दृश्य जगत् का स्वरूप उसने प्रत्यय वाला माना है। पर सब प्रत्ययों का आधार तो आत्मा है जो स्वयं प्रत्यय नहीं है। बर्कले इसे स्पष्ट नहीं कर सका। आत्मा General Idea नहीं है वरन् वह सबका आधार है। बर्कले ने भिन्न-भिन्न आत्माओं के अतिरिक्त ईश्वर को भी सत्य माना है। पर बर्कले बुद्धिसंगत होने से आत्मा और ईश्वर के सम्बन्ध को स्पष्ट नहीं कर सका। बर्कले ने केवल अनुभव को ज्ञान का साधन माना। इसी अनुभववाद के आधार पर उसने जड़ वस्तुओं के अस्तित्व का खंडन किया। पर आत्मा के विषय में उसने कहा कि आत्मा प्रत्यय नहीं है तथा अनुभववाद द्वारा गुणों की अनुभूति से आत्मा को नहीं जाना जा सकता।

हम देखते हैं कि बर्कले ने जड़ जगत् के अस्तित्व का खंडन करने के लिये शुद्ध अनुभववाद को आधार माना, पर आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करने के लिये उसने अनुभववाद को त्याग दिया। अनुभववाद का तर्कसंगत निष्कर्ष शुद्ध विज्ञानवाद ही हो सकता है जिसके अनुसार व्यक्तिगत प्रत्ययों को छोड़कर अन्य

कोई भी द्रव्य सत्य नहीं। सफेदी, मिठास के गुणों से चीनी का ज्ञान हुआ। इसी तरीके से सफेदी, स्वाद, द्रव्यता से दूध का ज्ञान हुआ, पर इसी विधि से आत्मा का ज्ञान कैसे हो सकता है?

बर्कले कहता है कि सारा ज्ञान किसी ज्ञाता पर निर्भर है। आलोचक पूछता है कि यदि हम फूल के सामने से हट जायें या आँख बंद कर लें तो क्या उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए बर्कले ने ईश्वर की सत्ता को मान लिया तथा कहा जब फूल को कोई व्यक्तिगत रूप में कोई व्यक्तिविशेष नहीं देख रहा है तब ईश्वर देख रहा है। व्यक्तिगत आत्मा और परमात्मा में क्या सम्बन्ध है। यह भी बर्कले ने स्पष्ट नहीं किया। क्या ईश्वर भी व्यक्तियों के समान देखता है या अनुभव करता है यह भी स्पष्ट नहीं हुआ।

निरपेक्ष चैतन्यवाद—इस मत के अनुसार सृष्टि की अन्तिम सत्ता चेतन है, जो पूर्णतया निरपेक्ष तथा स्वावलम्बी है। किसी दूसरे पर निर्भर नहीं है। इस विचारधारा का प्रारम्भ काण्ट, फिक्टे से हुआ और पूर्ण विकास ग्रीन, ब्रेडले, हीगेल में हुआ। इसके अनुसार सृष्टि की अन्तिम सत्ता एक है पर वह अनेकता में प्रतिबिम्बित होती है। एक में अनेक और अनेक में एक यानी एकता में अनेकता और अनेकता में एकता। एक ब्रह्म ही जगत् की अनेकता में अपने को प्रकट करता है तथा यह अनेकता उसी एकता में समा जाती है।

हीगेल के मत में विश्व बोधगम्य है। बुद्धि के नियम ही प्रकृति के नियम हैं। ज्ञान के क्षेत्र में प्रगति के लिए वाद-प्रतिवाद और सम्वाद की प्रक्रिया बताई जो अन्त में पूर्णज्ञान निरपेक्ष सत्य तक पहुंचाती है। परम तत्त्व किसी पर निर्भर नहीं। वह स्वयंभू है। वह विरोध रहित है तथा पूर्ण है।

आलोचना—1. चैतन्यवाद के अन्य रूपों की अपेक्षा निरपेक्ष चैतन्यवाद अधिक तर्कसंगत है।

2. हीगेल के मत में प्रकृति का जड़ रूप माया या भ्रम है। यही विचार भारत में शंकराचार्य आदि का था। प्रश्न है कि इस भ्रम का कारण क्या है?

3. हीगेल ने केवल एक निरपेक्ष बुद्धि को परम तत्त्व स्वीकार किया। निरपेक्ष बुद्धि किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं रखती। यदि बुद्धि देश-काल, पात्र-परिस्थिति का विचार न करे तो नैतिक आचरण हो ही नहीं सकता।

4. यदि विश्व की अन्तिम सत्ता निरपेक्ष बुद्धि ही है और सब आत्मायें उसी एक निरपेक्ष बुद्धि की ही छाया मात्र है, तो नैतिक आचरण के लिये व्यक्तिगत स्वतंत्रता बचती ही नहीं। यदि मनुष्य में संकल्प की स्वाधीनता नहीं है तो उसे नैतिक आचरण के लिये उत्तरदायी नहीं माना जा सकता।

5. हीगेल के मत में सम्पूर्ण विश्व बुद्धिगम्य है तथा विश्व की सम्पूर्ण प्रगति बुद्धि-जगत् में ही होती है। इस तरह हीगेल की दुनिया एक बुद्धि में बंद दुनिया है। ज्ञान के लिये ज्ञाता और ज्ञेय भी चाहिये। यदि सारा विश्व मूलतः मन स्वरूप ही है तो मन के जानने का विषय क्या होगा? क्या मन ही मन को जान रहा है, विश्व है ही नहीं?

विश्व हमारी कल्पना में है। उदाहरणार्थ—जगत् को पहले ही मन रूप मान लिया। ब्रह्माण्ड में चाँद-सितारों को मन रूप मान लिये तो हम उनको जान ही नहीं सकते हैं केवल उसका ज्ञान न होकर मन का ही ज्ञान हो रहा है।

भारतीय चैतन्यवाद का सबसे प्राचीन रूप उपनिषदों में मिलता है। उपनिषद् वेदों का ही ज्ञान-भाग है। भगवान् वेदव्यास ने ब्रह्मसम्बन्धी वैदिक सूत्रों को ध्यान में रखकर ब्रह्मसूत्र नाम के ग्रंथ की रचना की। यही वेदान्त का आधार ग्रंथ माना जाता है।

भगवान् शंकराचार्य ने अद्वैत वेदान्त के रूप में महानतम भाष्य लिखा। उनका वैदिक सूक्त एकोऽहं द्वितीयो नास्ति है। शंकराचार्य के दर्शन को उनके एक श्लोक में संक्षिप्त रूप से कहा जा सकता है—

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि, यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।।

जो करोड़ों ग्रंथों में कहा गया है उसे मैं आधे श्लोक में बताता हूँ कि ब्रह्म ही सत्य है और ब्रह्म के सिवा जगत् मिथ्या है और जीव स्वरूप से ब्रह्म ही है और ब्रह्म के सिवा कुछ नहीं।

आत्मा और परमात्मा दोनों स्वरूप से चेतन ही हैं। दोनों में बड़ा और छोटापन केवल उपाधिभेद ही है जो मिथ्या है। जैसे विष का प्याला और विष की बूंद दोनों स्वरूप से विष ही हैं। जैसे बिन्दु और सिन्धु दोनों स्वरूप से जल ही हैं। जैसे विराट् अग्नि और चिंगारी दोनों स्वरूप से अग्नि ही हैं। उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा स्वरूप से चेतन ही है। चेतना और चेतना में भेद नहीं। प्रकाश और प्रकाश के बीच विभाजक रेखा नहीं लगायी जा सकती। प्रकाश से प्रकाश को अलग नहीं किया जा सकता—

धरती की विभाजक रेखा थोड़ी देर के लिये
रेत की विभाजक रेखा कम थोड़ी देर
पानी की विभाजक रेखा क्षणिक
आकाश की विभाजक रेखा असंभव
प्रकाश की विभाजक रेखा नितान्त असम्भव

आत्मा ही विश्व का आदि प्रकाश, प्रथम प्रकाश, मूल प्रकाश एवं अनादि-प्रकाश है।

वस्तुओं एवं मानवों में अन्तर का कारण—मानव मानव में या वस्तु में अन्तर का कारण है माया (भ्रान्ति, मिथ्याज्ञान, छलावा, इन्द्रजाल, मोह (=अज्ञान)। माया का शाब्दिक अर्थ है—मा=नहीं या=जो अर्थात् जो वास्तव में नहीं है किन्तु भासती है। जैसे मृग मरीचिका, आकाशकुसुम, गंधर्व नगर। माया के दो मुख्य अभिकर्ता हैं—Two agents of Maya.

(क) नाम। नाम कल्पित है, बदलने वाला है। हमारे मैं से भिन्न है।

(ख) रूप। गर्भ में जीवन एक सूक्ष्म शुक्राणु से शुरू होता है, प्रतिक्षण बदलता रहता है। अन्त में श्मशान की धूलि के कण में बदल जाता है। वस्तुओं एवं व्यक्तियों में परस्पर भेद का कारण नाम की भिन्नता एवं रूप की भिन्नता है। इसी के कारण प्रकृति में अनेकता है।

दृष्टान्त—सागर में एक लहर उठी, कोटि-कोटि बुदबुदे बन गये। कोई बुलबुला बड़ा कोई छोटा। कोई मोटा, कोई पतला। कोई चमकदार, कोई साधारण। कोई प्रकाश में, कोई अंधेरे में। कोई लहर के ऊपर, कोई बीच में, कोई नीचे। कोई बुलबुला उत्तर में, कोई दक्षिण में। कोई पूर्व में तो, कोई पश्चिम में। कोई यह, कोई वह। बुलबुलों के नाम भिन्न, रूप भिन्न। बुलबुलों के राग-द्वेष, ईर्ष्या....

चेतना की एक हिलोर से अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हो गये। उसी के संकल्प खींच लेने पर प्रलय। नाम-रूप रहते हुए ही जो नाम-रूप से परे अपने आत्मस्वरूप (चेतना) को जान लेता है वह जीवन्मुक्त होकर संसार में विचरण करता है।

शंकर कहते हैं कि बुलबुला बनने से पहले भी जल था। बुलबुला बने हुए भी जल ही है तथा बुलबुला मिट जाने पर भी जल ही होगा। इसलिए जल तीनों काल में सत् है। पर बुलबुला (नाम-रूप के साथ) न अतीत में था और न भविष्य में रहेगा। केवल वर्तमान में दिखता-सा है। जो वस्तु तीनों काल में सत् रहे वही सत् है। जो केवल वर्तमान में सत्-सी दिखती हो, भूत और भविष्य में झूठी हो। वह धोखा (माया) है। ऐंद्रजालिक धोखे से रुपया बनाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कसौटी बतायी है। सत् वस्तु का कभी अभाव नहीं हो सकता और असत् सदा टिकी नहीं रह सकती—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।। 2/16

सत् का कभी अभाव नहीं है, नहीं असत् का होता भाव।
तत्त्वदर्शी ऋषियों ने इन, दोनों का ही किया ठहराव।।

व्यवहार जगत् में नाम-रूप की महत्ता है। इसके बिना सांसारिक व्यवहार सम्पन्न नहीं किये जा सकते। पारमार्थिक दृष्टि से नाम-रूप का कोई महत्त्व नहीं है। जीव जब जगत् में आता है तभी नाम-रूप धारण करता है और संसार में ही नाम रूप छोड़कर चला भी जाता है। इसलिए संसार में नाम-रूप साधक है। क्योंकि संसार में असंख्य जीव हैं। जीवों में मानव भी अरबों की संख्या में हैं। अतः बिना नाम और रूप के संसार का कोई व्यवहार नहीं सध सकता। पर परमार्थ में बाधक है। भेद ज्ञान में सहायक है नाम-रूप और अभेद ज्ञान में नाम-रूप बाधक है। अनेकता की सिद्धि में नाम-रूप सहायक है पर एकता में नाम-रूप बाधक है।

अनेकता में एकता—बुलबुला, तरंग, लहर, फेन, वीचि, ज्वारभाटा, वाष्प, भाप, बादल, घना बादल, जलवृष्टि, हिमवृष्टि, बर्फ, ओला, ओस, नदी, नद, तालाब, बावड़ी, कुआं, झरना, प्रपात, नहर, समुद्र... व्यवहार में नाम भी भिन्न है और रूप भी भिन्न-भिन्न हैं तथा कार्य भी अलग पर तत्त्व से सभी जल हैं। जल को शेष कर दें या घटा दें तो कुछ भी नहीं बचता है। अतः जल तत्त्व तीनों काल में सत् है। नाम-रूप तो वर्तमान में कुछ समय के लिए भासता सा है।

जो तत्त्व को देखता है वह कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। आत्मज्ञानी पुरुष शोक से पार हो जाता है। जो नाम-रूप को देखता है उसे शोक में संतप्त होना ही पड़ता है उसे क्योंकि नाम-रूप तो नष्ट हो जाता है।

अहंता और ममता, बंधन के दो हेतु हैं—

अहंता यानी False I झूठा मैं। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार को मैं समझ लेना अहंता है।

झूठे मेरेपन की भावना को ममता कहते हैं। sense of false my यह अहंता पर ही निर्भर करती है। गलत मैं की भावना से गलत मेरेपन की भावना उत्पन्न हो जाती है। मैं शुद्ध तो मेरापन शुद्ध है। मैं में भ्रान्ति तो मेरापन में भ्रान्ति। मेरा मैं का ही परिणाम है और यह दोनों अज्ञान का परिणाम है।

ज्ञानजनित आकर्षण ही प्रेम, भक्ति, मुक्ति का मार्ग है और अज्ञानजनित आकर्षण ही मोह है जो शोक और भय का कारण है। मोह का अर्थ मूर्च्छित हो जाना है। इसमें बुद्धि मूर्च्छित हो जाती है। किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति अज्ञानजनित आकर्षण को ही मोह कहते हैं। इसमें बुद्धि मूर्च्छित हो जाती है। विवेक लुप्त हो जाता है और जीव को जिन वस्तुओं, घटनाओं या व्यक्तियों से भय अथवा शोक नहीं होना चाहिए उन्हीं से भयभीत होने लगता है और उनका शोक करने लगता है। उदाहरणार्थ—अपने नित्य पहनने वाले कोट से भय का कोई कारण नहीं, पर अंधेरे में उसे भूत समझकर डरने लगता है। धुंधले प्रकाश में, अंधेरे

में उसकी नींद खुलने पर भयभीत हो जाता है। पर प्रकाश होने पर भय समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार ज्ञान के होते ही मोह लुप्त हो जाता है और भयमुक्त हो जाता है। नश्वर वस्तुओं, क्षणभंगुर शरीरों और परिवर्तनशील घटनाओं के ही ठीक स्वरूप को न जानने के कारण उसके प्रति मोह हो जाता है। उनके छिन जाने या नष्ट हो जाने की आशंका से उसके नाश से पहले ही भय होने लगता है और उनके छिन जाने के पश्चात् जीव शोक करने लगता है। उदाहरणार्थ—एक धनी साहूकार धन के प्रति मोह के कारण चिंतित एवं भयभीत रहता है कि हाय धन लुट न जाय और धन के लुट जाने पर शोक में छाती पीटने लगता है। पहले भय बाद में शोक। इसी प्रकार मोहग्रस्त माता चिंता करती रहती है कि कहीं मेरे बच्चे पर संकट न आ जाय और नश्वर शरीरों के चले जाने पर शोक में डूब जाती है।

वास्तव में हर वस्तु और हर व्यक्ति का अन्तिम स्वामी तो परमेश्वर ही है। वस्तु तो अल्पकाल के लिए प्रयोगार्थ हमें मिलती है और छिन जाती है। अल्पकाल के लिए वस्तु मेरी है केवल सदुपयोग के लिए, मिल्कीयत के लिए नहीं। झगड़ा सदुपयोग के लिये नहीं मिल्कीयत के लिए होता है। मिल्कीयत ईश्वर की और सदुपयोग हमारे लिये। मेरा कहने से मिल्कीयत की भावना होने से घातक होगी।

द्वे पदे बंधमोक्षाय, निर्ममेति ममेति च।
ममेति बध्यते जन्तुः निर्ममेति विमुच्यते।।

दो शब्दों में बंध मोक्ष का निर्णय होता, यह मेरा का भाव अथवा नहीं कुछ मेरा। मेरा मेरा कहने से बंध जाता जन्तु, मेरा कुछ नहीं, मुक्त होने का लक्षण। मेरापन (ममता) स्वार्थ भाव। मेरा कुछ नहीं है (सब कुछ प्रभु का है)—यज्ञार्थ भाव। हवन के मंत्रों में बार-बार दुहराया जाता है—इदं न मम—अर्थात् यह मेरा नहीं है।

अनात्मा को आत्मा समझना अहंता है।

अहंता का शाब्दिक अर्थ है अहंकार।

ममता के कारण मनुष्य स्वार्थी बनता है (यह मेरा पैसा है)

लोभी बनता है (यह मेरा लाभ है)

मोही बनता है (यह मेरा बेटा संजय है)

प्रभु से सदुपयोग मांगें, स्वामित्व नहीं—वस्तुओं एवं व्यक्तियों का सदुपयोग करने के लिये मेरा कहना उचित है, किन्तु स्वामित्व के अर्थ में मेरा कहना अपराध है। सबका स्वामी प्रभु ही है—

सारी प्रभुता प्रभु की, सारा वैभव विभु का
सारा ऐश्वर्य ईश्वर का, सारी माया महेश्वर की

सारी प्रकृति परमेश्वर की, सारी लक्ष्मी नारायण की।

ईशावास्यमिदं सर्वम्—जगत् में जो कुछ है सबका सृष्टा भी प्रभु, सबका स्वामी भी प्रभु, सब में व्याप्त भी प्रभु, सब कुछ प्रभु में व्याप्त।

मानव धन का स्वामी नहीं केवल प्रयोक्ता या न्यासी (Trustee) है—मानव अपने जन्म के समय एक कौड़ी लेकर आता नहीं और मृत्यु के समय एक कौड़ी ले जा सकता नहीं। अतः वह संसार की किसी भी निधि का स्वामी नहीं। प्रभु अतीव कृपा करके, प्रभु उस पर विश्वास Trust करके धन या अन्य निधियों को प्रयोग के लिये देते हैं जिससे व्यक्ति समाज, परिवार, राष्ट्र और विश्व के बड़े-से-बड़े कल्याण के लिए सदुपयोग कर सके इसलिए मानव केवल Trustee है। ईश्वर की दी हुई सम्पत्ति न बेकार जानी चाहिये और न दुरुपयोग होना चाहिये। ईश्वर की सम्पत्ति को अपना कहना विश्वासघात (Breach of trust) है।

अर्थ, व्यर्थ, अनर्थ एवं सार्थ—धर्मविहीनं अर्थमनर्थम् (धर्म के बिना अर्थ अनर्थ है)

यज्ञविहीनं अर्थं व्यर्थम् (समाज कल्याण के बिना अर्थ व्यर्थ है)

धर्मार्पितं धनधान्यं धन्यम्।

यज्ञार्पितं हि द्रव्यं दिव्यम्।

श्री रामकृष्ण परमहंस ने कहा—भगवान् दो बार हंसते हैं—

(क) जब एक डॉ. रोगी की नाड़ी देखने के पश्चात् गर्व से कहता है अब आप चिन्ता न करें मैं इसको बचा लूंगा। अहंता का दोष है, तब भगवान् हंसते हैं। अरे डॉ.! जब तुम्हारे प्राण निकलने लगे तो स्वयं को बचा लेना। वास्तव में डॉ. तो केवल treatment करता है Cure तो भगवान् की कृपा पर निर्भर है।

(ख) जब दो भाई हाथ में रस्सी लेकर जमीन बांटते हैं और कहते हैं यह तेरी है और यह मेरी।

अपनी तन की मिट्टी तो ढो नहीं सकता फिर और बोझ धरती की मिट्टी का बांध रहा है (या धरती का बोझा बांधने चला)। अतः अपने पास जो बोझा है उसको तो पहले संभाल।

शंकराचार्य के विषय में लोगों को भ्रान्ति है कि वे जगत् को पूर्णतः मिथ्या मानते हैं। वास्तव में वे सत्ता के स्तरों का तारतम्य निम्न प्रकार से स्पष्ट करते हैं।

सत्ता के तीन स्तर

प्रातिभासिक सत्ता—जिसका केवल आभास होता है वास्तविक नहीं। जैसे कि स्वप्नलोक, शुक्ति में मोती, मरुभूमि में जल, रज्जु में सर्प। स्वप्नलोक पूर्णतः

कल्पित है और रज्जु में सर्प समझने में रज्जु की सत्ता है पर उसमें सर्प की भ्रान्ति होती है।

व्यावहारिक सत्ता—जगत् एक व्यावहारिक सत्ता है जो संसार के कर्तव्यों के निर्वाह तक के लिए सत् मान लेने से काम चल सकता है पर उसे अन्तिम सत्य नहीं माना जा सकता। क्योंकि एक समय था यह जगत् नहीं था। एक समय है यह है, एक समय होगा जब पुनः नहीं होगा। अतः जगत् को जगत् के व्यवहार के लिए सत् तथा जीवन के परम लक्ष्य की दृष्टि से असत्य मानना चाहिए।

पारमार्थिक सत्ता—जीवन का परम पुरुषार्थ एवं परम अर्थ पूर्णत्व की प्राप्ति, अमरत्व की प्राप्ति, मोक्ष की प्राप्ति है। वास्तव में सत्य है ही वही जिसकी सत्ता का कभी नाश न हो सके। ऐसी पारमार्थिक सत्ता ब्रह्म या आत्मा ही है अन्य कुछ नहीं।

विवर्तवाद—जगत् वास्तव में उसी प्रकार ब्रह्म पर आश्रित है जिस प्रकार सर्प की प्रतीति रज्जु की सत्ता पर आश्रित है। जो वस्तु स्वयं अपनी सत्ता के बल पर है उसे वर्तमान कहते हैं। जो वस्तु स्वयं अपनी सत्ता पर नहीं दूसरे की सत्ता पर टिकी है, उसे विवर्त मानते हैं। विवर्त एक प्रकार का अतात्त्विक परिवर्तन Unreal Change है जैसे रज्जु में सर्प दिखने पर रज्जु वास्तव में सर्प में बदल कर सर्प नहीं हो गयी। उसमें केवल प्रतीति हो गयी। विवर्त जादूगर की जादूगरी जैसा है। इसी विवर्त के द्वारा ही ब्रह्म में जगत् की प्रतीति हो रही है। जल में बिन्दु, तरंग, फेन आदि की प्रतीति होती है। इसे ही विवर्तवाद कहा जाता है।

तात्त्विक परिवर्तन विवर्त से भिन्न है। तत्त्व में परिवर्तन हो जाने को विवर्त नहीं कहकर विकार कहते हैं। जैसे दूध से दही बनना। इसमें दूध दही के रूप में परिवर्तित हो जाता है। पुनः दही का दूध बनना सम्भव नहीं।

वेदान्त किसी भी वस्तु का निषेध कर, खण्डन कर उसको शाश्वत जीवन प्रदान करता है। इसलिए वेदान्ती अत्यन्त सहृदय होता है। बौद्धों के यहां जगत् शून्य का विवर्त है। अतः जगत् का मूल शून्य और जगत् के नष्ट होने पर शून्य बचता है। अतः बौद्धों के यहां जगत् के नष्ट होने पर शून्य बचता है। पर वेदान्त जगत् के मूल में, अधिष्ठान में सत् (ब्रह्म) को मानता है। अतः जगत् के नाश से ब्रह्म की सत्ता शेष रहती है। जगत् कार्य रूप से मिथ्या, असत् पर कारण रूप से सत् है। समुद्र तरंग रूप से मिथ्या पर जल रूप से सत्य है। तरंगमाला को मृत्यु के भय से मुक्त करने के लिए कहते हैं तरंगमाला! तू कार्य रूप से असत्, पर उपादान कारण जल के रूप में सत्य है। जल ही तेरा जीवन, तेरा वास्तविक स्वरूप है। तू अपने को मूल रूप से जल मान और अपने को दुःख से मुक्त मान।

कुछ समय के सत्संग में वेदान्त मनुष्य को अमर जीवन प्रदान करता है। जीव के भीतर के ब्रह्म को जगाना, मानव के भीतर के भगवान् को जगाना, नर के भीतर नारायण को जगाना वेदान्त का उद्देश्य रहा है। ईश्वर कोई सातवें आसमान पर न होकर हमारे भीतर ही समाया हुआ है—

सब घट मेरा साँईंया सूनी सेज न कोय,
बलिहारी वा घट की जा घट प्रकट होय।

उसी को प्रकट करना, जगाना, जानना, उसी का लाभ प्राप्त करना ही सच्चा स्वराज्य है। सच्चा स्वास्थ्य है, सच्ची स्वतंत्रता है। अपनी आत्मा के अलावा किसी अन्य का दास बनने में गुलामी है। आत्मज्ञान एवं आत्मलाभ में ही मुक्ति है। वेद कहता है, 'अयमात्मा ब्रह्म' यह आत्मा ही ब्रह्म है। अतः तुम पंचभूत के पुतले मात्र नहीं हो। तुम शुद्ध, बुद्ध, मुक्त आत्मा हो। तुम भेड़ नहीं शेर हो। तुम दुर्बल नहीं बली हो। तुम पापी नहीं निष्पाप हो।

शंकर को मायावादी कहना सत्य का गला घोंटना है। शंकर ने माया को माया कहकर उसको त्यागने तथा ब्रह्म को प्राप्त करने का आदेश दिया है। शंकर माया के नहीं ब्रह्म के पुजारी हैं। अतः ब्रह्मवादी हैं।

बौद्धों का योगाचार्य मत—बौद्धों के योगाचार्य के मत में भी चेतना एक विज्ञान प्रवाह stream of consciousness है। चेतना के सिवा किसी वस्तु की सत्ता नहीं। इस मत को विज्ञानवाद भी कहा जाता है। यह मत शंकराचार्य के मत के बहुत निकट है। पर जहां शंकराचार्य आत्मा या ब्रह्म शब्द का प्रयोग करते हैं वहां योगाचार्य मत के बौद्ध इस विषय में मौन हैं।

आलोचना—(1) योगाचार्य मत के अनुसार बाह्य वस्तु का अस्तित्व नहीं है। यह वास्तव में मन का ही प्रत्यय Concept है। यदि बाह्य वस्तुओं का अस्तित्व ही नहीं तो उनकी प्रतीति मन में कैसे होती है?

(2) योगाचार्य मत में वस्तु और उसका ज्ञान दो नहीं एक ही हैं। पर यथार्थवादी मानते हैं वस्तु ज्ञान से भिन्न है।

(3) योगाचार्य मत में बाह्य वस्तुओं का अस्तित्व ही नहीं है। यदि यह सच है तो हमें दो प्रकार की चेतनाओं में भेद करना असम्भव हो जायेगा। घड़े को देखकर घट ज्ञान, पट को देखकर पट ज्ञान होता है।

(4) शांकर मत चैतन्यवाद का पूर्ण विकसित एवं तर्कसंगत रूप है। पर यह स्पष्ट नहीं होता कि अज्ञान की उत्पत्ति कहां से और कैसे होती है?

(5) सृष्टि की उत्पत्ति की व्याख्या भी स्पष्ट नहीं होती।

(6) चैतन्यवाद विश्व में एक प्रयोजन या उद्देश्य को मानता है। यह बुद्धि को संतुष्ट करता है और आधुनिक वैज्ञानिक भी इस ओर झुक रहे हैं।

(7) पर जगत् को मिथ्या या माया या भ्रम कहना युक्तिसंगत नहीं है।

(8) मन बिना शरीर के पाया नहीं जाता और बिना मन के चेतना सम्भव प्रतीत नहीं होती। तब एक खुला प्रश्न बच जाता है क्या अशरीरी चेतना का अस्तित्व है? भारतीय तत्त्वज्ञानियों का उत्तर है—'हां'।

(9) यदि विश्व बुद्धिगम्य है तो सभी पदार्थों में बुद्धि निहित मिलनी चाहिए। पर यथार्थ में अनेक पदार्थों में बुद्धि या चेतना नहीं है।

(10) ग्रीन आदि प्रयोजनवादियों का विचार है कि विश्व की व्यवस्था के लिये चेतन आत्मा आवश्यक है। इससे द्वैत का स्थान बन जाता है। एक जड़ जगत् और उसमें व्यवस्था करने वाली चेतन आत्मा।

(11) यदि जड़ जगत् भी मूलतः चेतन ही है तो ज्ञान की सम्भावना नहीं बचती। ज्ञाता के लिए ज्ञेय उससे भिन्न होना चाहिए।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।

ऋग्, 10/191/2

हे मनुष्यो! जैसे सनातन से विद्यमान, दिव्य शक्तियों से सम्पन्न सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि आदि देव परस्पर अविरोध भाव से, मानो प्रेम से, अपने-अपने कार्य को करते हैं; ऐसे ही तुम भी समष्टि-भावना से प्रेरित होकर एक साथ कार्यों में प्रवृत्त होओ, ऐकमत्य से रहो और परस्पर सद्भाव से बरतो।

क्या भगवान् शंकराचार्य प्रच्छन्न बौद्ध थे?

(क) कई आलोचक शंकराचार्य पर आरोप लगाते हैं कि वे प्रच्छन्न बौद्ध थे। क्योंकि उन्होंने बौद्धों के समान जगत् को मिथ्या माना। यह आरोप कई आचार्यों ने, द्वैत और त्रेतवादी दार्शनिकों ने भी लगाया है।

(ख) कई आलोचक उन्हें मायावादी कहकर उनकी निन्दा करते हैं।

(ग) कई मध्यकालीन एवं आधुनिक आलोचक यह आरोप लगाते हैं कि उनके जगत् विचार और मायावाद के कारण व्यक्ति की कर्मण्यता का नाश हुआ। समाज की अपार क्षति हुई तथा देश पराधीन हुआ है।

(घ) यह भी आलोचना कि जब जगत् ही मिथ्या है तब सारे कर्म अच्छाई-बुराई भी मिथ्या ही हैं। तब सारा इतिहास मिथ्या है और इतिहास निर्माता महापुरुष एवं अवतारी पुरुष भी मिथ्या ही हैं। तब बौद्ध एवं वेदान्त का भेद भी मिथ्या है। खण्डन-मण्डन शास्त्रार्थ भी मिथ्या ही है। इस प्रकार जगत् के मिथ्या हो जाने से मानव भी निरर्थक एवं मिथ्या रह जाता है।

वास्तव में इन आरोपों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि शंकराचार्य पर यह आरोप एवं आक्षेप भी अतिचार एवं मिथ्या ही हैं—

शंकराचार्य के दर्शन को परम्परा का बल प्राप्त है। उन्होंने ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषदों की ही व्याख्या की है, नया मतवाद स्थापित नहीं किया।

वेदों में वेदान्त का मूल निहित है—

'हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।'

(शुक्लयजुर्वेदीय ईशावास्योपनिषद्)

हे पूषन। सत्यस्वरूप आप सर्वेश्वर का श्रीमुख ज्योतिर्मय सूर्यमण्डलरूप पात्र से ढका हुआ है, आपके भक्तिरूप सत्यधर्म का अनुष्ठान करने वाले मुझको अपना दर्शन कराने के लिए उस आवरण को आप हटा लीजिए।

अहं त्वं असि त्वं वाऽहमस्मि।

मैं तुम बन जाऊं, तुम मैं बन जाओ....मेरी प्रार्थना और वरदान सफल हो जाय।

गीता में सत् की कसौटी—

कुरुक्षेत्र की रणस्थली में एकत्र 18 अक्षौहिणी सेना, उनके शरीर, उनके महासमर, रक्तपात आदि सभी असत् हैं क्योंकि एक समय था जब वे नहीं थे। मध्य में थे। पुनः कुछ काल बाद नहीं रहे। जिसकी सत्ता त्रिकाल में नहीं है केवल मध्य में रहती है, उसे शंकराचार्य सत्य नहीं मानते। जो त्रिकाल अबाधित सत्ता है, उसे ही सत्य स्वीकारा है।

गीता में माया की स्थापना—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। 7/14

वेदव्यास द्वारा श्रीमद्भागवत आदि में माया की स्थापना की गयी है।

गौडपादाचार्य द्वारा जगत् की प्रतीति का निरूपण किया गया है।

शंकराचार्य द्वारा सत्ता के तीन स्तरों का वर्णन। जगत् की व्यावहारिक सत्ता है, पारमार्थिक नहीं।

आधुनिक विज्ञान भी जगत् को सापेक्ष सत् मानता है, निरपेक्ष सत् नहीं।

परमाणु विज्ञान ने भी सिद्ध किया है कि जो वस्तु जैसे दिखाई देती है वैसी वास्तव में नहीं। चट्टान का टुकड़ा स्थिर प्रतीत होता है किन्तु उसके भी परमाणुओं की बड़ी तीव्र गति चल रही है।

प्रच्छन्नता का अर्थ है वास्तव में कुछ और होते हुए धोखे का वेश धारण करते हुए किसी को ठगने का प्रयास करना। प्रच्छन्न बौद्ध का अर्थ हुआ वैसा व्यक्ति जो वास्तव में हृदय से बौद्ध हो किन्तु बौद्ध धर्म के हित साधन के लिये चालाकी से संन्यासी का वेश धारण कर लिया है। रावण प्रच्छन्न साधु बन गया था। कर्ण प्रच्छन्न ब्राह्मण बनकर कुछ समय के लिए रहा। वैसे ही कुमारिल भट्ट प्रच्छन्न बौद्ध, बौद्ध धर्म के अध्ययन के लिये बने। शंकराचार्य ने बौद्धों का कुछ भी हित साधन नहीं किया बल्कि बौद्धों को शास्त्रार्थ में पराजित कर उन्हें देश से भी निष्कासित कर दिया।

यदि शंकराचार्य बौद्ध भिक्षु बनकर बौद्धों के हित के विरुद्ध गुप्त रूप में कार्य करते तो बौद्ध लोग उन्हें प्रच्छन्न कह सकते थे। किन्तु शंकराचार्य ने ऐसा काम नहीं किया और बौद्धों ने प्रच्छन्न बौद्ध कहा भी नहीं। वे तो उन्हें अपना सबसे बड़ा प्रकट शत्रु एवं विरोधी मानते रहे।

शंकराचार्य न प्रकट बौद्ध थे न प्रच्छन्न। वे तो प्रकट संन्यासी थे जो खुले आम चुनौती देकर शास्त्रार्थ में विरोधियों को पराजित कर अपने विचारबल से ही दिग्विजय करने में समर्थ थे। अतः उन्हें प्रच्छन्नता की कभी आवश्यकता ही नहीं थी।

शेर को डरने की आवश्यकता नहीं। प्रच्छन्न वेश धारण करने की आवश्यकता नहीं। प्रच्छन्नता सोद्देश्य होती है निरुद्देश्य नहीं। ठग विद्या करने वाला खुले आम प्रकट रूप में अपनी बात कहने और अपना उद्देश्य पूरा करने में असमर्थ अथवा भयभीत रहता है। इसलिए वह चालाकी से धोखाधड़ी का वेश धारण कर प्रच्छन्न रूप में अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। शंकराचार्य जैसे विश्वविख्यात महानतम दार्शनिक पर ऐसा आरोप लगाना सर्वथा अनुचित है।

किसी भी विचार का तार्किक परिणाम विचारक के अपने जीवन की कृति से आंका जाता है। यदि शंकराचार्य का दर्शन मानव को अकर्मण्य बनाता है तो उसका सबसे प्रथम परिणाम तो द्रष्टा के निजी जीवन पर होना चाहिये। किन्तु शंकराचार्य के समान कर्मठ व्यक्तित्व भारतीय इतिहास में खोजने पर भी दूसरा नहीं मिल सकता। यदि उनका दर्शन उन्हें ही अकर्मण्य नहीं बना सका तो अन्यों को, दर्शन के अध्येताओं को अकर्मण्य क्योंकर बनायेगा?

शंकराचार्य को मायावादी कहना भी अन्याय है। भौतिकवादी भूत को परम सत् मानता है। अध्यात्मवादी आत्मा को परम सत् मानता है। इसी तरह जो माया को परम सत् माने वही मायावादी होगा। किन्तु शंकराचार्य माया को नितान्त मिथ्या मानते हैं। अतः वे मायावादी नहीं ब्रह्मवादी थे।

शंकराचार्य माया का निराकरण कर जीवों को ब्रह्मलाभ कराने के लिये दर्शन प्रस्तुत करते हैं। जीवों के तीन ताप, पंचक्लेशों का निदान करते हुए उन्होंने मायारूपी उपाधि-व्याधि को दर्शाया है। जैसे डॉक्टर रोग का निदान करके रोग के निराकरण के लिये उपचार करता है तो उसे रोगवादी नहीं कहा जायेगा और उसके औषधालय को रोगालय कहना अनुचित होगा।

शंकराचार्य जैसा समाज सेवक, धर्मसंस्कारक, राष्ट्रनिर्माता भी अन्य कोई नहीं हुआ।

जहां छोटे-छोटे राजा-रजवाड़े चप्पा-चप्पा भूमि के लिये परस्पर रक्तपात करते हुए देश के हजारों टुकड़े बनाते रहे, वहां शंकराचार्य जैसे निर्लिप्त महापुरुष ने भारत को एक सुदृढ़ सांस्कृतिक एकता में निबद्ध किया। राष्ट्र के महानतम निर्माताओं में वे सबसे शिरोमणि गिने जायेंगे।

पश्चिम में राष्ट्र राजनीतिक इकाई से बनते रहे इसलिए सारे यूरोप की सभ्यता, संस्कृति और धर्म एक होते हुए भी बीस राष्ट्र बन गये। इसकी उलट भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई का नाम है। इसलिए राज्य अनेक और राजे देशी और विदेशी होने पर भी भारत अभी तक एक बना रहा। यह सब शंकराचार्य की ही कृपा है।

पारमार्थिक स्तर पर ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लोकसंग्रह के लिये व्यावहारिक स्तर पर निर्लिप्त भाव से कर्म करने की प्रेरणा एवं जीवन का प्रत्यक्ष उदाहरण शंकराचार्य ने ही प्रस्तुत किया है। कर्तव्य की दृष्टि से जगत् को व्यावहारिक सत् मानकर उत्तम से उत्तम कर्म करना चाहिए। किन्तु कर्म निर्लिप्त भाव से करने के लिये निरन्तर स्मरण रखना चाहिए कि जगत् क्षणभंगुर, अनित्य है। इसलिए इसके मोहपाश में फंसना उचित नहीं है। मनुष्य प्रायः जो कर्म करता है, जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में है उन वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति उसका ममता भाव बन जाता है। जिससे उसका अपना ही अहित हो जाता है। जगत् का हित करते हुए यदि अपना ही अहित हो गया तो यह घाटे का ही सौदा है। दूसरे की अल्पसेवा हुई और स्वयं 84 लाख योनियों के फेर में पड़ गया। यह बुद्धिमत्ता नहीं। फिर वस्तुओं, व्यक्तियों से मोह हो जाने के कारण जगत् का भी हित न होकर अहित होने लगता है।

सम्राट् भूमि के टुकड़े पर शासन करता है। उसे भूमि से मोह होता है, वह भूमि विस्तार और राज्य विजय के लिये संघर्ष, रक्तपात करता है। परिव्राजक, अलिप्त होकर निर्मल भाव से विश्व की सेवा करता है तथा भूमि पर राज्य न करके मानवों के हृदयों पर राज्य करने लगता है। जहां सम्राटों की सेनाएं हार जाती हैं, वहां परिव्राजक बिना सेना के केवल दण्ड-कमण्डलु लेकर एक अलौकिक दिग्विजय कर लेता है।

परिव्राजक हृदयों पर शासन करने के कारण वहां जनता निःस्वार्थ भाव से, निःशुल्क सेवा समर्पित करती है। सेवा ही नहीं स्वयं उपहार के रूप में फल, मिठाई आदि लाते हैं और उसी में एक कण प्रसाद के रूप में पाकर अपने को कृतकृत्य समझते हैं। वहीं राजा के यहां सेवा मोटा-मोटा वेतन लेकर करते हैं। वेतन में थोड़ा विलम्ब हो गया या उन्हें अहसास हुआ कि वेतन कार्य की अपेक्षा कम दिया जा रहा है तो विद्रोह, बगावत कर देते हैं। जबकि परिव्राजक को निःशुल्क श्रम यानी तन, मन और धन तीनों समर्पित करते हैं।

संसारी लोग छोटी-छोटी तुच्छ कामनाओं में फंसे रहते हैं और कामनापूर्ति के लिए इस विषयों के संसार को सत् मान लेते हैं। किन्तु निष्काम कर्मयोगी अपने समस्त कर्म प्रभु की प्रीति के लिये करता है, अपनी या किसी अन्य की कामनापूर्ति के लिए नहीं। इसलिए कामना की अपूर्ति होने पर भी न दुःखी होता

है, न कर्म छोड़ता है और न परिस्थिति की भयंकरता से भयभीत होता है। स्वामी शरणानन्दजी का कथन है—

जो चाहते हैं सो होता नहीं,
जो होता है सो भाता नहीं,
जो भाता है सो रहता नहीं।

चाहने और होने के बीच की खाई से दुःख होता है। होने और भाने के बीच अन्तर होने से भी दुःख होता है। भाने वाली वस्तु के प्रति मोह हो जाता है इसलिए उसके नाश या देहांत से पुनः दुःख होता है। इसलिए निष्काम भाव एवं आचार होना दुःख से बचने का सबसे उत्तम उपाय है। जब तक संसार को सत् मानते रहेंगे तब तक उसकी चाह बनी ही रहेगी। जब उसकी नश्वरता एवं असत्यता का बोध हो जायेगा तब उसके प्रति वितृष्णा एवं वैराग्य उत्पन्न हो जायेगा। भर्तृहरि सारा राज्य त्यागकर वन की ओर जा रहे थे। उन्हें एक स्थान पर एक गोल अशर्फी चमकती हुई दिखाई दी। उनके मन में विचार आया कि जंगल में यह काम आयेगी। ज्योंही लपककर हाथ बढ़ाया तो ज्ञात हुआ वह अशर्फी नहीं किसी के मुख से थूका हुआ बलगम है। जो धूप में चमक रहा था। जब आदमी को बोध हो जायेगा कि संसार की वस्तुएं तृण या थूक के समान त्याज्य हैं तो वह ध्येयमार्ग की ओर बढ़ने वाला कर्मवीर संसार के बड़े से बड़े प्रलोभन से भी न विचलित होगा और न मोह बंधन में बंधेगा। ऐसे कर्मयोगी की कर्मशक्ति संसार की मोह-माया से मुक्त होकर और अधिक चमक उठेगी। संसार की अनित्यता से मुक्त होने का संदेश देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्। 9/33, गीता**—अर्थात् इस अनित्य सुखहीन संसार को प्राप्त कर इसमें न फंसते हुए मुझ पूर्ण पुरुषोत्तम, परब्रह्म परमेश्वर की आराधना कर। यह संतोष का विषय है कि आलोचकों ने जगत् को अनित्य कहने वाले भगवान् कृष्ण को भी प्रच्छन्न बौद्ध नहीं कह दिया।

शंकराचार्य का संसार के प्रति वैराग्य का गलत अर्थ लगाने के कारण मध्यकाल के संतों ने परलोकवाद, जगत् मिथ्यात्व आदि का जैसा प्रचार किया उसके कारण समाज की कर्मण्यता को क्षति अवश्य पहुंची। किन्तु औषधि का दुरुपयोग करने में दोष रोगी का ही है वैद्य या उसके निर्माता का नहीं।

मलूकदास कहते हैं—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम।।

कबीर कहते हैं—

रूखी सूखी खाय कर ठण्डा पानी पीव।
देख परायी चूपड़ी मत ललचाओ जीव।।

संतोष की अशुद्ध व्याख्या से भी राष्ट्र की महत्त्वाकांक्षा-विजिगीषा मर जाती है। शंकराचार्य का मन्तव्य ऐसा कभी नहीं था। उन्होंने स्वयं सामाजिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में दिग्विजय करके दिखाया और राष्ट्र को चिरंतनजीवी बनाने के लिये सांस्कृतिक एकता का सम्पादन किया। वैराग्य और संतोष में यह विवेकपालन करना चाहिये कि संतोष हमें होना चाहिये जो कुछ हमारे पास है। परन्तु उसमें कभी नहीं होना चाहिये जो कुछ हम हैं। We should be contented what we have, but not what we are. अर्थात् वस्तुओं में संतोष होना चाहिये किन्तु आत्मविकास में कभी संतोष नहीं होना चाहिये। जीवनभर अधिक से अधिक आध्यात्मिक विकास करना चाहिये। शंकराचार्य के दर्शन का उचित पालन करने से व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और मानव मात्र का बड़े से बड़ा कल्याण साधन हो सकता है।

पेट के कीड़े और आँख की गर्मी दूर करने के लिये औषधि बनाई गई। पर हमने आँख की औषधि पेट में और पेट की औषधि आँख में डाल ली और पेट और आँख की अधिक क्षति की तो यह दोष औषधि का नहीं औषधि के प्रयोग करने वाला का है। वैसे 'जगत् मिथ्या है' कि का प्रतिपादन करके बताया इसमें फंसो नहीं, निर्लिप्त और निष्काम भाव से इसके प्रति कर्म करो। इससे आसक्त मत होओ। क्योंकि यह मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है। उसी की प्राप्ति के लिये कर्म करो। पर हमने उलटा किया जगत् को सत्य मान लिया है और भगवान् को मिथ्या। जिसके कारण आज समाज में बुराइयां आ गई हैं।

संसार में प्रत्येक जीव जो-जो चाहते हैं वैसा-वैसा हो नहीं सकता। संसार में सभी की अपनी-अपनी चाहना है। उसके अनुसार संसार में सबकी चाहना पूर्ति नहीं हो सकती है। जैसे कि मैं चाहता हूं दर्शन का पंडित बनना, पर ऐसा नहीं हो पाता है। और जो होता है उससे हम संतुष्ट नहीं होते। वह हमारे मन के अनुकूल नहीं होने के कारण उससे संतुष्ट नहीं रहते हैं। और जो मन के अनुकूल होता है वह अधिक देर तक टिकता नहीं। इस तरह हम तीनों स्थितियों में संतुष्ट नहीं रह पाते हैं कि जो चाहते हैं सो होता नहीं। जो होता है जो भाता नहीं। जो भाता है सो टिकता नहीं।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। यजु., 36/18

मैं मनुष्य क्या, सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं! हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखे!

शब्दकोश

शब्द	अर्थ
Philosophy (Greek)	Philos+sophia Love of wisdom ज्ञान का प्रेम
Philos	प्रेम
Sophia	ज्ञान
दर्शन	सत्य का दर्शन सत्य का साक्षात्कार
Fragment	टुकड़ा, खण्ड
Fragmentry view	खण्डशः दृश्य
Jury	Fact finding committee
Theism	आस्तिकवाद वह सिद्धान्त जिसके अनुसार ईश्वर है।
Atheism	नास्तिकवाद जिसके अनुसार ईश्वर की सत्ता नहीं है।
Nihilism	शून्यवाद वह सिद्धान्त जिसके अनुसार विश्व में कोई अन्तिम स्थायी सत्ता नहीं है।
Sceptic	संशयालु, संशयात्मा, संदेहशील, अति संशय करने वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है।
संशयात्मा विनश्यति (गीता)	संशयालु व्यक्ति का नाश हो जाता है।
Gno (Latin)	ज्ञान, जानना
Gnostic Idealism	ज्ञानी, जानने वाला (1) Spiritualism (2) अध्यात्मवाद (3) चेतनावाद

शब्द	अर्थ
अव्याकृत प्रश्न (भगवान् बुद्ध)	अप्रासंगिक प्रश्न
घटाधारः घृतः वा घृताधारः घटः।	घट का आधार घी है अथवा घी का आधार घट है। ईश्वर सृष्टि में है या सृष्टि ही ईश्वर में है।
भगवान् बुद्ध के ईश्वर सम्बन्धी मौन का अर्थ	(क) मौनं सम्मतिलक्षणम् (मौन हां का लक्षण है) (ख) मौनं अस्वीकृति लक्षणम् (ग) मौनं संशयलक्षणम् भगवान् बुद्ध ईश्वर को मानते थे।
बौद्ध दर्शन का निर्वाण	ब्रह्म निर्वाण, मोक्ष, ईश्वर-प्राप्ति
अव्याकृत प्रश्न का उदाहरण (बुद्ध)	घर में आग लग जाने पर प्रश्न—
(जब मानव समाज जल रहा है तब व्यर्थ के शास्त्रार्थों में समय गंवाना मूर्खता है। नैतिक कर्म ही समाज को बचा सकते हैं।)	1. आग का प्रथम कारण क्या है? 2. आग का अन्तिम कारण। 3. आग का हेतु। 4. आग के लिए उत्तरदायी कौन? 5. आग का ताप क्या है? 6. आग का स्वरूप क्या है? 7. कितनी देर में आग मनुष्य को भस्म कर देगी? 8. भस्मी का भार कितना है?
Goodness is the road to Godliness	नेकी का मार्ग ही भगवान् तक पहुंचाता है।
पृथा	कुन्ती के जन्म का नाम, वसुदेव की बहन।
पार्थ	अर्जुन अथवा किसी पाण्डव का नाम।
Mediterranean sea	भू-मध्य सागर
Medi	मध्य
Terrain	धरती
शरीर में पांच तत्त्वों के विशेष स्थान	
1. पृथ्वी तत्त्व	कटि से नीचे (टांगें) सबसे स्थूल
2. जल तत्त्व	लंगोट का स्थान (पृथ्वी से सूक्ष्म)

शब्द		अर्थ		
3. अग्नि तत्त्व		पेट, जठराग्नि (जल से अधिक सूक्ष्म)		
4. वायु तत्त्व		फुप्फुस से नासिका (अग्नि से सूक्ष्म)		
5. आकाश तत्त्व		कपाल (वायु से सूक्ष्म)		
पंच प्राण				
प्राण		बाहर निकलने वाला श्वास		
अपान		भीतर जाने वाला श्वास		
व्यान		कठिन परिश्रम में रोका हुआ श्वास।		
समान		सूक्ष्म वायु जो अन्नरस को सूक्ष्म नाड़ियों तक पहुंचाता है।		
उदान		मरने के समय निकलने वाली वायु।		
तन्मात्रा		गुण को जानने की सूक्ष्म शक्ति		
करण		इन्द्रिय (साधन)		
बाह्य करण		बाहर की इन्द्रियां		
पाँच ज्ञानेन्द्रियां	तत्त्व	गुण	तन्मात्रा	इन्द्रिय यंत्र
	पृथ्वी	गन्ध	घ्राण तन्मात्रा	नासिका
	जल	रस	रस तन्मात्रा रसनेन्द्रिय	रसना जीभ
	अग्नि	रूप	दृष्टि	चक्षु
	वायु	स्पर्श	स्पर्श तन्मात्रा	त्वचा
	आकाश	शब्द	श्रवण	कर्ण
पाँच कर्मेन्द्रियां		1. हस्त 2. पाद 3. वाक् 4. गुदा 5. उपस्थ		
अन्तःकरण		अन्दर की इन्द्रियां 1. मन (मनन करने वाला, संकल्प-विकल्प करने वाला) 2. बुद्धि (विचार करने वाली अन्तर् इन्द्रिय)		

शब्द	अर्थ
	3. चित्त (चिन्तन करने वाली, चिन्ता करने वाली इन्द्रिय)
	4. अहंकार (मैं की प्रतीति, स्वाभिमान को परखने वाली इन्द्रिय)
ईश्वर	ईशन करने वाला, नियंत्रण करने वाला,
ईशन	शासन
ईशिता	शास्ता, शासक
सीयराम मय सब जग जानी। करहुं प्रणाम जोरि जुग पानी।। (तुलसी)	जगत् को सीयराम से व्याप्त जानकर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं।
पिण्ड	शरीर
यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे	जैसे पिण्ड में पांच तत्त्व हैं वैसे ब्रह्माण्ड भी पांच तत्त्वों का खेल है।
Common	(क) समान (ख) साझा, जिस पर सभी का अधिकार हो।
Common Salt	(ग) साधारण, साधारण नमक
Common Man	जनसाधारण
Common Problem	समान समस्या
Common Property	साझी सम्पत्ति
Common Heritage	साझा उत्तराधिकार
Commune	वह गांव या कस्बा अथवा नगर जिसमें सबके परिवार एवं सम्पत्ति साझी हो।
Paris Commune	रूस का एक छोटा कस्बा जिसमें लेनिन ने कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तानुसार साझा परिवार एवं साझी सम्पत्ति का प्रयोग किया। उसके परिणाम बड़े भयंकर निकले। लगभग 75 प्रतिशत बच्चे यौन रोगों से पीड़ित हो गए तथा समाज में अशान्ति एवं कलह का साम्राज्य फैल गया। अन्त में तंग आकर यह प्रयोग बंद कर देना पड़ा।
नाक (संस्कृत)	स्वर्ग
नाकपति	इन्द्र

शब्द	अर्थ
प्र+पंच	प्रपंच पांच तत्त्वों के पंचीकरण से बना हुआ संसार
विज्ञान	किस नियम से क्रिया-प्रक्रिया होती है, उसे विज्ञान कहते हैं। प्रक्रियाओं का सम्यक् ज्ञान।
क्रिया	Activity, Ethics में जीवित प्राणी की गतिविधि।
गति	निर्जीव वस्तु का चलना।
कर्म	जीवित प्राणी का संकल्पयुक्त स्वेच्छा से किया गया कर्म।
प्रक्रिया	Process, Procedure क्रिया करने की विशेष रीति। क्रिया का नियमबद्ध रूप।
विज्ञान	मात्र प्रक्रिया का अध्ययन करता है। तत्त्व का नहीं। यथा तेजाब पर लिटमस का प्रभाव, विज्ञान प्रपंच का ज्ञान Phenomenal knowledge
दर्शन	प्रपंच के पीछे तत्त्व की खोज करता है।
हार्द	हार्दिक तत्त्व, केन्द्रीय तत्त्व
वैखरी	प्रकट भाषा
मध्यमा	मन ही मन बोलना या बहुत धीरे होंठों से फुसफुसाना
परा	मन में बोलने का संकल्प
पश्यन्ती	बोलने के भाव को चेतना द्वारा देखना
साम	गीत Psalm (साम) Latin
सामवेद	गीतों वाला वेद
Hedonism (इन्द्रिय सुखवाद, भोगवाद)	इंग्लैंड के दार्शनिकों का वह मत जिसके अनुसार इन्द्रिय सुखभोग ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है Loke, berkley, Hume, Benthem sidgwick
Epicurianism	प्राचीन यूनानी दार्शनिकों का वह मत कि इन्द्रिय-सुख ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है।

शब्द	अर्थ
पाश्चात्य सभ्यता का सूत्र	इनकी घोषणा है Eat, Drink & be Merry खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ।
Cogito	I know मैं जानता हूं
Ergo	Therefore इसलिए
Sum	I am मैं हूं। स्वयं
Epistemology ज्ञान शास्त्र	दर्शन की वह शाखा जिसमें परमतत्त्व को जानने की विधि और माध्यम का अध्ययन किया जाता है।
Axidogy	जीवनमूल्यों का दर्शन। डॉ. राधाकृष्णन् जीवन-मूल्यों के दार्शनिक हैं। पश्चिम के दार्शनिक अर्बन ने भी नीति शास्त्र में मूल्यों का सुन्दरतम विश्लेषण किया है।
अहंता	Sense of false I
(Egotism)	झूठी मैं की भावना, अहंकार।
Ego	मैं, अहं, अहंकार
ममता	Sense of false my झूठी मेरे की भावना, राग आसक्ति, लोभ, गलत रूप में मैं, मेरा कहना।
अपवर्ग	पवर्ग का अभाव प = पाप से मुक्ति फ = फल से मुक्ति ब = बंधन से मुक्ति भ = भय से मुक्ति म = मोह से मुक्ति = मोक्ष
Teleology	The philosophy of ends (Goals) जीवन के उद्देश्यों का दर्शन।
Monist	एकतत्त्ववादी
Mono	एक
Monoism	एकतत्त्ववाद
Pluralism	अनेक तत्त्ववाद या बहुतत्त्ववाद

शब्द	अर्थ
Monotheism	एकेश्वरवाद, परमतत्त्व के विषय में इनका कोई आग्रह नहीं है कि वह एक है अथवा अनेक। इनका आग्रह केवल ईश्वर के विषय में है कि ईश्वर एक है दो नहीं।
Monist come Monotheist	एकतत्त्ववादी और एकेश्वरवादी जो सृष्टि का अन्तिम तत्त्व एक ही है। और वह ईश्वर ही है। जैसे, शंकराचार्य
Ontology	The philosophy of existance सत्ता का विज्ञान
Monist come Materialist	एकतत्त्ववादी और जड़वादी, यानी तत्त्व एक है और वह तत्त्व जड़ ही है। जैसे कार्लमार्क्स एकतत्त्व, जड़वादी है।
Monist come Atheist	एकतत्त्ववादी नास्तिक जैसे डार्विन
Dualist Monotheist	द्वैतवादी पर ईश्वर को एक माने। जैसे मध्वाचार्य
Trulist Monotheist	त्रेतवादी और एकेश्वरवाद आर्य समाज, न्याय दर्शन।
Pluro-theist	बहुदेववादी, पश्चिम वालों का आक्षेप है हिन्दू धर्म पर कि ये बहुत से ईश्वर को मानते हैं।
Pantheism	वह सिद्धान्त जिसके अनुसार सारा विश्व ब्रह्ममय है। तुलसी, सीयराम मय सब जग जानी, करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी। भारत के अधिकांश दार्शनिक इसी मत को मानते हैं।
Panantheism	वह सिद्धान्त जिसके अनुसार अनेकानेक देवताओं के पीछे एक ही ब्रह्म की शक्ति है। इसे रहस्यवाद भी कहते हैं।
Mysticism	रहस्यवाद
Pantheon	देवता मण्डली
Every Monist may not be monotheist	प्रत्येक एकतत्त्ववादी, एकेश्वरवादी नहीं हो सकता। जैसे, मार्क्स।
Every spiritual monoist must be a Monotheist	प्रत्येक आध्यात्मिक एकतत्त्ववादी एकेश्वरवाद अवश्य मानेगा

शब्द	अर्थ
Every Monotheist is not a Monist	प्रत्येक एकेश्वरवादी, अनिवार्य रूप से एकतत्त्ववादी नहीं हो सकता। जैसे, स्वामी दयानन्द, मध्वाचार्य।
जैनमत के आत्मतत्त्व के विषय में	आत्मा का निश्चित आकार नहीं होता। वह जिस शरीर को धारण करता है उसी के आकार का हो जाता है। जैसे जल, सूर्य की रोशनी का आकार नहीं है पर जिस पात्र में रखा जाता है उसी का आकार धारण कर लेता है। वैसे ही आत्मा जैसे शरीर को धारण करता है वैसा ही अपना विस्तार कर लेता है। जैनमत के अनुसार जिस प्रकार एक कमरे को सूर्य, दीपक, लालटेन सभी कोई मिलकर प्रकाशित कर सकते हैं ठीक उसी प्रकार दो आत्मा भी एक शरीर को प्रकाशित कर सकता है।
दिक् और काल की अनन्तता	दिक् और काल स्वयं में कोई वस्तु नहीं है। मानव ने व्यवहार की सुविधा के लिए दिक् को चार भागों में बांटा और काल को तीन भागों में। और एक अनुपात में काल को बांधा, जैसे—घंटा, मिनट, सेकंड। काल का कोई अन्त नजर नहीं आता। इसकी कोई गणना या अनुमान-कल्पना भी नहीं कर सकता। इसलिए इसे अनन्त कहा जाता है। उसी प्रकार स्थान का आदि यानी कहां से प्रारम्भ हुई और अन्त कहां है इसको कोई न देख सकता है न माप सकता है। फिर पृथ्वी के समान, चन्द्रमा के समान, सूर्य के समान कितने अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। जानना तो दूर रहा। अतः इसे भी अनन्त कहते हैं। जिस प्रकार काल कब से प्रारम्भ हुआ और कब अन्त होगा इसे कोई भी नहीं जान सकता। उसी प्रकार स्थान

शब्द	अर्थ
	को भी। हम आँख से अतिनिकट की वस्तु भी नहीं देख पाते और सुदूर दूर को भी नहीं। इसी प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु नहीं देख पाते और बहुत विशाल को भी नहीं। अतः मनुष्य की आँख से काल और स्थान का आकलन नहीं हो सकता।
आवर्तन	Cycle चक्र
दिन	एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक कालचक्र या मध्यरात्रि से मध्यरात्रि तक या सूर्यास्त से सूर्यास्त तक
घण्टा	दिन के 24वें भाग का चक्र
मास	मास चक्र
वर्ष	वर्ष चक्र
षष्ठी	षष्ठी चक्र
षष्ठीपूर्ति	जीवन के साठ वर्ष पूरे होने पर।
काल की आवर्तक गति	काल को चक्रों में ही मापा जा सकता है।
संवत्सर चक्र	साठ वर्षों का चक्र।
विमा	Dimension पहलू।
Two dimensional	dimensional surface ऐसा धरातल जिसमें लम्बाई, चौड़ाई है।
Two dimensional surface	दो विमाओं वाला तल। एक लम्बाई, दूसरा चौड़ाई।
Three dimensional thing	तीन विमाओं वाली वस्तु। जैसे—लम्बाई, चौड़ाई एवं मोटाई।
Space has three dimension	
Four dimensional Universe	आइंस्टीन के मत में सृष्टि की चार विमायें हैं। तीन विमायें Space या देश की और एक विमा काल की।

शब्द	अर्थ
Five dimensional Universe	भारतीय विचार की दृष्टि से सृष्टि की पांच विमायें हैं—लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई और काल की दो विमायें भूत और भविष्यत्।
Fah'renheit	अंग्रेजी की ताप मापने की पद्धति
98.4° F	स्वस्थ मनुष्य का तापमान।
105° F	बहुत तेज ज्वर का तापमान
मानव के लिए फॉरेनहाइट तापमान	95° से 110° F
Absolute zero	-480° F वह कल्पित तापमान जिसके नीचे कोई जीवाणु, रोगाणु, बैक्टीरिया Virus नहीं जी सकता।
0° centigrade	सेंटीग्रेड (फ्रेंच तापमान पद्धति) का शून्य दर्जा जिस पर पानी जम जाता है, बर्फ हो जाता है। = 32° F
32° F	=0° C पानी के जमने का तापमान।
212° F	100° C पानी के उबलने का तापमान।
Hypothesis	Condiction thesis ऐसा सिद्धान्त जो यदि बाद में तथ्यों द्वारा प्रमाणित माना जाएगा। अर्थात् शर्त वाला नियम।
Inert	निर्जीव
Inertia	जड़ता, आलस्य, स्थिरता
Synchronize	मेल खाना, सम-सामयिक होना
Synchronize your watch with Radio	रेडियो से अपनी घड़ी को ठीक मिला लीजिये।
Mirage	मृगतृष्णा, मृगजल
Simultaneous	युगपत्, एक साथ घटने वाली घटना
युग, युगल	जोड़ा
युग्म	जुड़ा हुआ
युगव्यूह	दो पंक्ति में खड़ा होना
युगपत्	दो वस्तुओं का एक साथ घटना

शब्द	अर्थ
केन्द्रक	केन्द्र का बिन्दु Atom का Proton जिसके इर्द-गिर्द Electron घूमता है।
Spectrum	रंगों का क्रम, इन्द्रधनुष के सात रंग Violet बैगनी Indigo नील Blue नीला Green हरा Yellow पीला Orange नारंगी Red लाल
Prism	तिपहला शीशा
क्षीर	दूध
पाराशर्य	पराशर के पुत्र भगवान् वेदव्यास
स्वाध्याय	अपने स्वयं के स्वरूप का ध्यान व अध्ययन
विवस्वान्	सूर्य
वैवस्वत	सूर्य पुत्र—1. मनु 2. यम।
उप	निकट
सद्	1. विशरण (नाश) 2. गति 3. बैठना 4. अवसादन (शिथिल करना)
उपनिषद्	1. जिसके निकट जाने से संसार के बीज (अविद्या) का विशरण (विनाश) होता है। 2. परब्रह्म के पास पहुंचने वाली सद् (गति) 3. जिसके द्वारा जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि आदि उपद्रव समूह का सद् (अवसादन) अर्थात् शिथिल होना सम्भव हो (पुनर्जन्म चक्र रुक जाए) 4. गुरु के उप (निकट) नि (निश्चयपूर्वक) सद् (बैठना) 5. ब्रह्म के निकट बैठना अथवा ब्रह्म में प्रतिष्ठित होना।
ब्राह्मण	विराट्, महान्
soul	Self The real 'I'
Noun	नाम
Pronoun	नाम के स्थान पर व्यवहार होने वाला।
Name is not innate	नाम जन्मजात नहीं है।
Name is imaginery	
Name are many and different	
Names divide man from man	

शब्द	अर्थ
Names are changeable	
One man have many name than one man.	
Many persons have same name.	
Name is destructible	
Name is misnomer (गलत नाम)	
Name is not my real identity	
I am not name	
I am not form	
Man proposes, God disposes	बन्दा जोड़े पली पली, रब लुढ़ावें कुप्पा
Standing against the sun	सूर्य की तरफ पीठ करके खड़ा होना
पूर्व	जहां सूर्य पहले उगे। East
	इष्ट दिशा की ओर मुख करके पूजा करते हैं। इष्ट से अंग्रेजी का East बन गया है।
पूर्व गांधार	दर्रा खैबर से पूर्व की ओर रावलपिंडी तक राजधानी तक्षशिला थी। दर्रा खैबर से पश्चिम की ओर पश्चिम गांधार।
दक्षिण	पूर्व दिशा में खड़ा होने पर दायां हाथ। जिधर हो।
दक्ष	दक्षता वाला हाथ, दक्षिणा देने वाला हाथ। रावण से पूर्व दक्षिण दिशा का बड़ा महत्व था।
पश्चिम	सूर्य जहां पश्चात् में पहुंचे।
पश्च	से पश्चिम, पश्चात्, सभी का अर्थ बाद में।
पख्त	पश्च—पख्त, पखतून, पठान, पख्तूनिस्तान
पश्च गांधार	दर्रा खैबर का पश्चिम का देश, पठानों का देश
पठान	पहले केवल पश्चिम दिशा का सूचक, वर्तमान में अफगानिस्तान के पठानों का सूचक बन गया है।

शब्द	**अर्थ**
पाणिनि	पश्चिम गांधार का ब्राह्मण, संस्कृत का महान् वैयाकरण।
गांधार	गंधर्वों का देश
श्वेत गांधार	अफगानिस्तान के गौर वर्ण के आर्यों का देश।
किरात	नेपाल
किन्नर देश	हिमाचल प्रदेश
लाट देश	भूटान के उत्तर का तिब्बती भू-भाग।
लाम	लामाओं का देश, उत्तरी-पश्चिम देश।
खाम देश	दक्षिणी तिब्बत के खाम्पा लोगों का देश
उत्तर	बाद का
बुद्धोत्तर	बुद्ध के बाद
स्वातन्त्र्योतर	स्वातन्त्र्य के बाद
मरणोतर	मरण के बाद
त्रिविष्टप	स्वर्ग प्राचीनकाल में तिब्बत ही स्वर्ग था। गंगा तिब्बत (स्वर्ग) से आती है। भगीरथ से पूर्व उसका सारा जल हिमालय के उत्तरी पठार की ओर बहता था। भगीरथ ने (इंजीनियरिंग की) तपस्या द्वारा गंगा को भारत में आने का मार्ग दिया। गंगा मनुष्य द्वारा निर्मित सबसे बड़ी नदी है। शंकरधाम कैलास तिब्बत में है। प्राचीनकाल में लोग तपस्या के लिए कैलासवास या तिब्बत जाते थे और फिर लौट आते थे। तिब्बत का अधिपति अर्जुन भी वहीं तपस्या के लिए गया जहां उर्वशी का प्रसंग आया, वहीं से गांडीव लाया और नेपाल से पाशुपतास्त्र शंकर भगवान् से ले आये। पाण्डव लोग अपने उत्तर जीवन में उसी मार्ग से स्वर्ग की ओर गये। वहां शीत और हिम अधिक होने से अनेकानेक लोग गल जाते थे। इसलिये स्वर्गवास का अर्थ मृत्यु रूढ हो गया। अभी भी मृत्यु पश्चात् सिर उत्तर दिशा में कर दिया जाता है।

शब्द	अर्थ
गांधार कला	गांधार देश यवन देश की मूर्तिकला से प्रभावित। मूर्तिकला प्रणाली का गांधार नाम ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, छान्दोग्य उपनिषद् में आया है। पाणिनि के पूर्व गांधार की राजधानी तक्षशिला। अपर गांधार की राजधानी पुष्कलवती (पेशावर)। इस कला के प्रसिद्ध केन्द्र तक्षशिला, पुष्कलवती, नगरहार और स्वातघाटी, उड्डीयान (बेग्राम) कपिशी, बामीयान और बख्तरीयां। इस कला में भारतीय, यूनानी और मध्य एशिया की कलाओं का समन्वय है।
परोक्ष	अपने से भिन्न अन्य वस्तुओं को अपने से भिन्न जानना।
अपरोक्ष ज्ञान	तत्त्व या सत्य वस्तुओं को अपने में या अपने भीतर देखना, अपने से अभिन्न देखना।
Alogy	विज्ञान
Phychology	मनोविज्ञान
Phyche + alogy	Science of soul
Biology	जीव विज्ञान
Geology	भूगर्भ विज्ञान, धरती का चित्रण, भूगोल
Indology	भारत विद्या
Orientology	प्राच्यविद्या
Asiology	जीवनमूल्यों का दर्शन
Ontology	परमतत्त्व का विज्ञान, अन्तिम सच्चाई वाली विद्या
Indology	प्राच्य विद्या
Epic	पुरानी कथा
Terpretation onwards	आगे, मार्गदर्शक
Clime	Climate जलवायु
Time and Clime	काल और जलवायु या देश और काल
पदार्थ	जो वस्तु जगह घेरती है और वजन रखती है।
पदार्थ की तीन अवस्थायें Three states of matter	Solid, Liquid, Gas ठोस, द्रव, गैस

शब्द	अर्थ
ऊर्जा	पदार्थ की अन्तर्निहित शक्ति
ऊर्जा के प्राकट्य की विधि	When matter acts upon matter energy is produced जब पदार्थ पदार्थ पर कोई क्रिया-प्रतिक्रिया करता है तब ऊर्जा पैदा होती है।
Kinds of Energy	(1) Heat (2) Light (3) Electricity (4) Magnetic (5) Sound (6) Atomic
पदार्थ-ऊर्जा	पदार्थ को ऊर्जा में बदला जा सकता है तथा ऊर्जा को पदार्थ में। विश्व में पदार्थ या ऊर्जा की कुल मात्रा सदा बराबर (Constant) रहेगी। कभी पदार्थ ऊर्जा में बदल जाता है कभी ऊर्जा पदार्थ में। पदार्थ या ऊर्जा का स्वरूप से नाश नहीं होता।
Radio Active Energy	रेडियोधर्मी ऊर्जा। वह ऊर्जा जो रेडियो जैसी विद्युत् तरंगों के रूप में प्रत्येक अणु के अन्दर छिपी हुई है और अणु के विस्फोटन से प्रकट होती है।
भारतीय संस्कृति के चार आदर्श चार पुरुषार्थ चार फल चार पदार्थ	धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष
धर्म का शाब्दिक अर्थ धर्मो धारयते प्रजाः	धारण करने वाला। धर्म ने ही प्रजा को धारण किया हुआ है। जिन नियमों या गुणों का अवलम्बन कर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, विश्व की सत्ता सुदृढ़ या सुचारु रूप से कायम रहती है उसे ही धर्म कहा जाता है।
धर्म	समाज को विधिवत धारण करने वाला शाश्वत सिद्धान्त।
धर्म (सरलार्थ)	कर्तव्य Duty
शरीर धर्म	शरीर के सात कर्तव्य—शौच-स्नान, व्यायाम, भोजन, परिश्रम-सेवा, विश्राम।
कुल धर्म	परिवार की सेवा, सुरक्षा, प्रतिष्ठा करना।
जाति धर्म	जाति की सेवा-प्रतिष्ठा।

शब्द	अर्थ
समाज धर्म	समाज की सेवा-प्रतिष्ठा।
राष्ट्रधर्म	राष्ट्र की सेवा-प्रतिष्ठा।
विश्वपति धर्म	ईश्वर की सेवा, पूजा-प्रतिष्ठा।
धर्म (व्याख्या)	शरीर से लेकर ब्रह्मपर्यन्त समस्त कर्तव्यों की विधिवत परिपूर्ति ही धर्म है।
अर्थ	धर्म पर चलते हुए धन-धान्य की प्राप्ति एवं सदुपयोग।
काम	धर्म पर चलते हुए सांसारिक सुख कामनाओं की पूर्ति।
मोक्ष	धर्म पर चलते हुए भगवान् की प्राप्ति।
राग	Attachment आकर्षण
रज (धातु)	रंगत
रज (से)	मिट्टी
रजक	धोबी, रंगसाज
रंजन	रंगना
मनोरंजन	मन को रंगने वाला
रंजन	राग-रंग, प्रसन्नता
राग	रंगा जाना, खिंच जाना
अनुराग	किसी के प्रति अनुराग, आकर्षण, प्रेम
विराग	आकर्षण के विपरीत
वैराग्य	आकर्षण का अभाव
राग (मनोवैज्ञानिक)	किसी के प्रति अंध, अत्यधिक आकर्षण के कारण उसकी तरफदारी Favour
राग में अंधा	किसी अपने के दोषों को नहीं देखना, गांधारी —दुर्योधन
द्वेष	किसी के प्रति वैर भाव होने से उसके प्रति अनुचित शत्रुता (Prejudice)
द्वेष में अंधा	वह जो किसी पराये के गुण नहीं देखता

शब्द	अर्थ
राग-द्वेष द्वन्द्व	जोड़ा। एक होगा तो दूसरा अवश्य। कक्षा में 50 छात्र, 1 छात्र को नाजायज रूप से 5 अंक दे दिये शेष 49 के प्रति अन्याय। अपनों से राग और परायों से द्वेष बन जाता है। राग और द्वेष में मनुष्य पहले से ही सोच लेता है यानी पूर्व कल्पना कर लेता है। यह अच्छा है या बुरा है और उसी के अनुसार धारणा बना लेता है और उससे व्यवहार करता है। अपनों के प्रति राग और दूसरों के प्रति द्वेष यह मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है। इसमें मनुष्य पूर्व कल्पना कर लेता है किसी के प्रति और फिर उसके गुण और दोष नहीं देखते और पूर्व धारणा के आधार पर व्यवहार करते हैं। मनुष्य किसी के प्रति पूर्व धारणा बना लेता है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ बुरी चीज है तो उसमें कभी अच्छाई नहीं देख सकता और उसकी बुराई करना ही उसका काम हो जाता है। उसी प्रकार किसी के प्रति अच्छी धारणा बना लेता है उसकी बुराई नहीं देख पाता।
चेतना (संज्ञा)	
चेतना	होश-हवास, ज्ञान, प्रकाश, ज्योति, नूर, तेज, अन्तर्ज्ञान, प्रज्ञान, आत्मज्ञान
चेतना के तीन पहलू या माध्यम जिससे प्रकट होता है	(1) knowing प्रवृत्ति ज्ञानात्मक जो व्यक्ति चेतन है वह कुछ न कुछ अवश्य जान रहा है। (2) रागात्मक (भक्ति) Feeling जो भी होश में है उसे कुछ न कुछ दुःख या सुख का बोध अवश्य रहता है। (3) संकल्पात्मक प्रवृत्ति जो भी होश में है वह कुछ न कुछ संकल्प-विकल्प करता है।
आत्मा	शुद्ध ज्ञान, सच्चा मैं
मैं	अहम्, स्वयं, निज आत्मा
शरीर	शनैः शनैः शीयर्ते इति शरीरः जो धीरे-धीरे शीर्ण होता रहता है वही शरीर है।
जीर्ण जराजीर्ण-शीर्ण	पुराना, बुढ़ापे से शीर्ण, फटा हुआ, बिखरा हुआ।

शब्द	अर्थ
देह	दिहयति दियीत इति देहः जो आवरण डाले। देह एक्र पर्दा है जो आत्मा को ढके हुए है।
संदेह	जो सत्य या तथ्य को अच्छी तरह ढका हुआ है या पर्दा पड़ा हुआ है वही संदेह है।
दिहय	ढकना या पर्दा
देहाः एव महा संदेहाः	शरीर ही आत्मारूपी सत्य को ढकनेवाला बड़ा संदेह है। शुद्ध चेतना ही आत्मा है। सबको प्रकाश देने वाली शुद्ध चेतना है, वही आत्मा है। मन की चेतना रंगत से भरी हुई है। रंग से रंजित होने से यानी राग द्वेष, मित्र-शत्रु......आदि
Autocracy	एक अहंकारी व्यक्ति का शासन
Autocrate	आत्मा (अहं) शासी, अहंकारी शक्ति का शासन
Democracy	जनता का शासन
Theorem	प्रमेय, उपपत्ति जो प्रमाण योग्य है उसे कहते हैं प्रमाण योग्य Theory, सिद्धान्त को Theorem कहते हैं।
Percive	इन्द्रियों द्वारा जानना
Percept	इन्द्रियगोचर वस्तु
Conceive	विचार करना, गर्भधारण करना
Concept	विचार
चित्त	जड़ मन का स्वरूप
चित्	आत्मा, ब्रह्म
knower itself	अपने आप जानने वाला
सबको	सर्वश
होनहार	भावी, होने वाला जिसका भविष्य निश्चित है।
बिरवा	पौधा
बिरवान	पौधे
चीकने पात	चिकने, मुलायम पत्ते
प्रत्युत्पन्नमति	सूझ वाला
विपर्यय	विपरीत प्रभाव

शब्द	अर्थ
विधा	रीति, ढंग, रूप प्रकार
दिविधा	दो रास्ते
सुविधा	साफ रास्ते, सरल, सुन्दर ढंग
विधस्य	ब्रह्मा
विधायक	क्रमबद्ध करने वाला, व्यवस्थित करने वाला, निर्धारित करने वाला विधान, विधान बनाने वाला
विधवा	वि+धवः बिना धव के
धव	पति
सधवा	पति वाली
माधव	मां (लक्ष्मी) के धव (पति) नारायण।
Truth	
सत्य	जिस की सत्ता सदैव वर्तमान रहे।
सत्	होना, अस्तित्व होना। To be
अस्ति	है।
ईश्वरः अस्ति	ईश्वर है।
आस्तिक	जो मानता है कि प्रभु है।
नास्तिक	जो मानता है कि प्रभु नहीं है।
सत्+य	सत्य सदा सत्ता वाला, सच
परम सत्य	आदि सत्यं, युगादि सत्यं, भवति सत्यं, भविष्यति सत्यं।। आदि सच, युगादि सच, है भी सच, नानक होसी भी सच। देश-कालातीत (देश-काल के बंधन से मुक्त) अकाल पुरुष
तथ्य	देश-काल बद्ध
घटना	Space & time Bound
Fact	Event
	विश्व की प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति, घटना तथ्य है, सत्य केवल ब्रह्म ही है। एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।

सृष्टि के मूल में कितने तत्त्व हैं?

सांख्य ने 25 तत्त्व माने। जड़ की व्याख्या के लिए 24 तत्त्व और एक चेतन तत्त्व।

न्याय ने कहा 24 तत्त्व प्रकृति के ही विकार हैं। अतः प्रकृति में आ जाते हैं। अतः उसने 24 तत्त्वों को घटाकर प्रकृति को ही एक तत्त्व माना। दूसरा जीव और ईश्वर यानी तीन तत्त्वों को माना।

द्वैतवादी मत में जीव और ईश्वर दोनों चेतन हैं। अतः दोनों एक ही सत्ता चेतन सत्ता में आ जाते हैं। अतः उन्होंने दो सत्ता मानी जड़ और चेतन।

अद्वैतवादी ने कहा जड़ की कोई अलग से सत्ता नहीं है। वह चेतन की संकल्प शक्ति का विवर्त है। अतः अन्ततोगत्वा एक ही सत्ता बचती है। वह है ब्रह्म।

विज्ञान की दृष्टि से भी विचारें—Matter बचा ही नहीं सिर्फ Energy (शक्ति) बची। शाक्त लोग सारी सृष्टि को शक्ति रूप मानते हैं। यानी शिव की इच्छा से शक्ति ही क्रीडा कर रही है। Energy में पदार्थ के गुण बचे ही नहीं। इसलिए रसेल कहते हैं—जिन ईंटों पर जड़ का भवन खड़ा हुआ था वे ईंटें ही कच्ची निकलीं। क्योंकि उसमें Matter के गुण बचे ही नहीं।

वैज्ञानिकों की हठधर्मिता है कि Energy उत्पन्न होती है Matter से। हाथ पर हाथ मारते हैं तो Sound उत्पन्न होता है। हाथ पर हाथ घिसते हैं तो Heat उत्पन्न होती है। अतः Energy Matter से ही उत्पन्न होती है। अतः अन्तिम सत्ता Matter की ही है। रसेल कहते हैं उसमें Matter के गुण बचे ही नहीं। अतः Matter नहीं कहा जा सकता।

तो प्रश्न है, Matter अन्तिम सत्ता है या चेतन? तो अब प्रश्न उठता है जड़ चेतन की उत्पत्ति करके दिखाए या चेतन जड़ की उत्पत्ति करके दिखाये?

जड़ चेतन की उत्पत्ति कर नहीं सकता। चेतन जड़ को उत्पन्न कर सकता है। चेतन के संकल्प से ही जड़ की उत्पत्ति होती है। यह नित्य का व्यावहारिक अनुभव

है। भवन निर्माण का संकल्प पहले मन में उत्पन्न होता है फिर भवन बन जाता है। स्वप्न में भी हमारा मन ही स्वप्न का संसार रचता है फिर मन में ही समा लेता है। अतः चेतन ही अन्तिम परम सत्ता है।

त्रैतवाद

प्रकृति सत् है। इसमें चेतना और आनन्द का अभाव है। जीव सत् और चेतन-स्वरूप है। उसमें आनन्द का अभाव है। ईश्वर सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है।

अब अगर जीव या मनुष्य प्रकृति की शरण में जाता है तो जड़ता को प्राप्त होता है। चेतना और आनन्द से वंचित। इस तरह हानि में रहता है।

अब अगर पुरुष (जीव) स्त्री के सम्पर्क में जाता है या स्त्री पुरुष के सम्पर्क में जाती है तो सत् और चेतना की प्राप्ति होगी, आनन्द से वंचित रहेंगे। स्त्री-पुरुष सृष्टि की वस्तु है, आनन्द की नहीं। आनन्द तो सिर्फ ईश्वर में है।

अब अगर जीव ईश्वर की शरण में जाता है तब तीनों वस्तुओं सत्+चित्+आनन्द की प्राप्ति होती है।

द्वैतवाद

हम जगत् में दो वस्तुएं देखते हैं—पिण्ड और ब्रह्माण्ड। पिण्ड का अर्थ है जीवों का शरीर और ब्रह्माण्ड का अर्थ ब्रह्मा का शरीर। मोटे तौर पर इस जगत् में दो वस्तुएं देखते हैं—जड़ और चेतन। जिसे द्वैतवाद भी कहते हैं। प्रथम में समझने के लिए जड़ और चेतन का भेद करना तो ठीक है पर इससे एक पैर आगे बढ़ने पर एक समस्या खड़ी हो जाती है कि दो का अस्तित्व है या एक का? Universe का अर्थ होता है एक शक्ति का काव्य। अतः जगत् में एक (ही) की सत्ता सिद्ध होती है। अगर जगत् में दो मालिक की सत्ता है, ऐसा कुछ समय के लिए मान लिया जाए तो बहुत समस्या उठ खड़ी होती है।

दोनों मालिकों में आपस में संघर्ष होगा। ब्रह्माण्ड असंतुलित हो जाएगा। दोनों संघर्ष में मनमानी करेंगे। पर जगत् में ऐसा नहीं देखा जाता। यदि आग का काम जलाना है तो सदैव जलाती है। वह कभी मनमानी नहीं करती। वह एक का अनुशासन मानकर चलती है। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि कभी-कभार अग्नि जलाना बंद कर दे। अतः प्रकृति में मनमानी नहीं है। फिर जड़ स्वयं ज्ञानशून्य, चेतनाहीन होने के कारण विश्व को व्यवस्थित ढंग से संचालित कैसे कर सकता है? वो न स्वयं को जानता है और न चेतना को ही!

फिर काव्य में कोई शब्द, कोई मात्रा या शब्द जिस प्रकार घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता उसी प्रकार जगत् में भी कुछ घटाया और बढ़ाया नहीं जा सकता। और संसार में सभी वस्तुएं एक-दूसरे की पूरक एक दूसरे से सम्बन्धित और परस्पर

निर्भर है। इस जगत् में वास करने वाले सभी जीव कार्बन डाइऑक्साइड छोड़कर वायु को दूषित करते हैं। उतना ही जहरीला धुआं चूल्हे से बनता है और अन्य बमों के विस्फोट से वातावरण दूषित होता है। अतः ईश्वर ने वातावरण को शुद्ध करने के लिए अनन्त जंगल बनाए जो वातावरण को शुद्ध करते हैं और इसे स्वच्छ ऑक्सीजन देते हैं। हम सब अन्न खाते हैं और मल त्यागते हैं। धरती उसे पचाकर फिर से हमें अन्न देती है। भूमि को उर्वर बनाती है। सांप वायुमण्डल की विषैली गैसों को पीता है। अतः प्रकृति में से किसी भी वस्तु को घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता है।

प्रकृति में एक नैतिक नियम या आदर्श भी काम करता है। जैसे बच्चा जन्मते ही माता के स्तनों में दूध आ जाता है और बच्चे के दांत आते ही माता का दूध सूख जाता है। अतः प्रकृति का एक नियम है, जो प्रकृति को संतुलित किए हुए है। चूंकि प्रकृति में कुछ बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता इसलिए प्रकृति अपने आप में पूर्ण है। प्रकृति में नैतिक नियम या आदर्श काम करता है। इस तरह प्रकृति एक निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ रही है। इसलिए सृष्टि न कभी पुरानी पड़ती है न मरती है। हर नए बच्चे के जन्म पर खुशियां मनाई जाती है, मिठाई बंटती है, बाजे बजते हैं। नित्य सूर्योदय, नित नयी आशा, नया जीवन, नयी उमंग लेकर आता है। इससे उलटा महसूस नहीं होता। भौतिक वस्तुएं जैसे कि गीत या फिल्म को दूसरी या तीसरी बार देखने या सुनने पर Bore महसूस करने लगते हैं। पर सृष्टि के विषय में ऐसी बात नहीं है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

इशा. उ., 15

सत्य का मुख सुवर्ण—जैसी चमकीली वस्तुओं से छिपा हुआ रहता है।

पूर्व और पश्चिम के दर्शन में दृष्टिभेद

	पूर्व		पश्चिम
1.	मुक्त वातावरण में दर्शन का जन्म। धर्म से इसका विरोध या सम्बन्ध नहीं।	1.	पश्चिम का दर्शन एक समय तक चर्च का Hand bag फिर राजनीति का। दर्शन के क्षेत्र में जिन्होंने भी बाइबिल से भिन्न विचार रखे बहिष्कृत हुआ।
2.	समाज के रंग में दर्शन का समावेश है।	2.	यहां दर्शन सिर्फ दार्शनिकों तक सीमित।
3.	दर्शन ज्ञान का समस्त स्रोत एवं अन्तिम ध्येय है।	3.	अध्ययन के अनेक विषयों में एक विषय है।
4.	दर्शन के अनुकूल जीवन पद्धति अपनाने का प्रयास।	4.	थोड़ी-सी चोट में सारा दर्शन भूल जाते हैं।
5.	आन्तरिक खोज	5.	बाह्य खोज
6.	मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार	6.	सिर्फ Mind
7.	आत्मा की तीनों अवस्था जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति पर विचार	7.	सिर्फ जाग्रत् पर विचार
8.	तुरीय पर विचार	8.	यहां नहीं।
9.	सुषुप्ति नयी स्फूर्ति देती है।	9.	इस पर विचार नहीं।
10.	सहकार और समन्वय ही जीवन है।	10.	संघर्ष ही जीवन है, योग्यतम की विजय जिसकी लाठी उसकी भैंस।
11.	पूर्वी सभ्यता केन्द्र की ओर ले जाने वाली है।	11.	पश्चिमी सभ्यता केन्द्र से दूर ले जाने वाली है, परिधि में भटकाने वाली है।
12.	पूर्वी सभ्यता विधायक है, जोड़ने वाली है।	12.	पश्चिमी सभ्यता विनाशक है, तोड़ने वाली है।

भारतीय संस्कृति में शिव तत्त्व

पुण्य सलिला भागीरथी के अविछिन्न प्रवाह में जो स्थान भगवान् शंकर की नगरी काशी-अघनाशी का है, हमारी संस्कृति-सुरसरी में वही स्थान भगवान् शंकर की मंगलमय पर्व-रात्रि, शिवरात्रि का है। भारतीय संस्कृति की अमृतधारा में अध्यात्मतत्त्व प्राणरस के समान प्रवाहित हो रहा है। इसी अध्यात्म की भित्ति पर स्थिर रहने के कारण ही भारतीय संस्कृति मृत्यु को भी पराजित करती हुई मृत्युंजय पद को प्राप्त कर सकी है। भारत का आध्यात्मिक-ज्ञान नश्वर संसार के पीछे एक अविनश्वर सत्ता को खोजने की अमर जिज्ञासा से उत्स्फूर्त हुआ है। जब संसार के अधिकांश देशों में मानव का और पशुओं का कच्चा मांस खाने वाले, अधनंगे लोग बर्बरता के युग की कहानी को दोहरा रहे थे, जब अमरीका अन्धकार में डूबा हुआ था और यूरोप के लोगों ने अपनी बन्दर की पूंछ काट कर अभी इन्सान बनना नहीं सीखा था, उस समय भारत के महान् ऋषि हाथ में वेदज्ञान की मशाल लेकर सारे संसार को आलोकपथ दिखा रहे थे। वेदों के ऋषियों ने अपने हृदय का मंथन करके उसके भीतर के अजर-अमर, अविनाशी आत्मतत्त्व को पहचाना था। फिर उन्होंने सकल सृष्टि के सभी जीवों के भीतर उसी ज्योति को अनुस्यूत देखकर निखिल विश्व को अनुप्राणित करने वाली महाशक्ति के दर्शन किए। इसी सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान, सर्वसर्वेश्वरी शक्ति को 'परमेश्वर' कह कर उसकी अर्चना की गई। ऋषियों ने अपने हृदय मन्दिर में उस चिन्मय शक्ति के दर्शन किए थे जो शब्दों में वर्णित नहीं की जा सकती थी। किन्तु भाषा की लाचारी के कारण अन्तर की नस-नस को अनुप्राणित करने वाली चेतन शक्ति से इनकार नहीं किया जा सकता था। अपने उस महान् अनुभव की प्रसादी का आस्वाद शेष संसार को भी देने के लिए वह मौन आराधना वाले मुनि अब बोले बिना न रह सके और सप्त-सिन्धु के पवित्र तटों पर उन्होंने उस विराट को सम्बोधन कर वेद की अमृत ऋचाएं गानी आरम्भ की। इस तरह वे मौन अनुभव करने वाले 'मुनि' मानवता को आदि ज्ञान देने वाले 'ऋषि' बने।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव

जनसाधारण को दार्शनिकों की वह उलझी हुई गुत्थियाँ समझ नहीं आती थीं। इसलिए ऋषियों ने उसी निराकार, निर्विकार, निर्गुण और निरुपाधि ब्रह्म को कुछ

गुणों तथा उपाधियों से विभूषित करके समझाना प्रारम्भ किया। इस कार्य में भी गम्भीर चिन्तन के परिणामस्वरूप उस अनादि शक्ति के तीन महान् गुण ढूँढ़े गए। वह शक्ति सृजनात्मक है, पालन-पोषण करने वाली है तथा संहारात्मक है। इन तीन महान् गुणों के प्रतिनिधि के रूप में तीन महादेवों की परिकल्पना का उदय उन भावनाशील भक्तों के हृदय-मन्दिरों में हुआ। इन तीन देवों के नाम हैं, 'सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु तथा संहारकर्ता शंकर।' ब्रह्मा, विष्णु और महेश की इस त्रिपुटी में सकल विश्व समा जाता है। ये तीन देव अलग-अलग विभागों के स्वामी तीन परमाध्यक्ष प्रभु नहीं हैं अपितु एक ही ब्रह्म की उस अनन्तरूपा शक्ति के तीन प्रमुख रूप हैं। अतः कुछ ग्रन्थों में गाया है—'शिवस्य परमो विष्णु विष्णोश्च परमः शिवः।' अर्थात् शिव का इष्टदेव विष्णु है और विष्णु का इष्टदेव शिव। इसी प्रकार शिव और ब्रह्मा की, ब्रह्मा और विष्णु की मूलभूत एकता के कई प्रमाण मिलते हैं।

चैतन्य के तीन मौलिक रूप

मानव की आधारभूत चेतना तीन माध्यमों से प्रकट होती है। ज्ञानात्मक कार्यों से, भावनात्मक कार्यों से तथा संकल्पात्मक कार्यों से। चेतना के इन तीन पहलुओं से उस विश्व चेतना को पहचानने के लिए तीन मार्गों का जन्म होता है। वे तीन मार्ग हैं ज्ञानयोग, भक्तियोग तथा कर्मयोग। इन्हीं तीन मार्गों के अनुरूप यह तीन वेद हैं ज्ञान के प्रतीक वेदों के गाने वाले ब्रह्मा जी, भक्तों के आराध्य और श्रद्धा एवं निष्ठा से सुलभ भगवान् विष्णु तथा निरन्तर संहार कार्य में प्रवृत्त, अनवरत कर्म के प्रतीक भगवान् शिव। इन तीन महादेवों की तीन शक्तियाँ भी चेतना के तीन पहलुओं के अनुरूप हैं। सरस्वती ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी, लक्ष्मी सुख एवं सौभाग्य की पोषणा शक्ति और पार्वती दुर्गा के रूप में दुर्जनों का संहार करने वाली प्रलयंकारी शक्ति है।

सत्यं, शिवं और सुन्दरम्

भगवान् शिव वही परम ब्रह्म तत्त्व है जो शिव की सनातन शक्ति के रूप में वेद मन्त्रों में पूजित है। ब्रह्म का रूप होते हुए भी रूपी रूप से भिन्न हो ही नहीं सकता। परब्रह्म परमेश्वर तो नाम और रूप से परे ही हैं इसलिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश में से किसी रूप और किसी नाम से अर्चना करने पर पूजा उसी अरूपी और अनामी तत्त्व को पहुँचती है। तीन रूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश सत्यं, शिवं और सुन्दरम् के प्रतीक हैं। शमावस्था में सत्यं ही शिवं और शिवं ही सुन्दरं है।

शंकर एवं प्रलयंकर

शिवरात्रि का पावन पर्व इस अनन्त ब्रह्म का शिव के रूप में पूजन करने का दिवस है। भगवान् शिव को शंकर तथा प्रलयंकर, दोनों माना जाता है। शंकर के अर्थ में वे शम अर्थात् शान्ति को प्रदान करने वाले हैं। भक्तों के लिए वे परम

कारुणिक, परम मंगलकारी हैं। किन्तु वही शंकर दुष्ट हृदयों को प्रलयंकर भासते हैं। तुलसीदासजी के शब्दों में—'जा की रही भावना जैसी। प्रभू मूरत तिन देखी तैसी।। वैसे भी मृत्यु के देवता से कल्याण की आशा विरोधाभास प्रतीत होती है। किन्तु इन में विरोध फिर भी नहीं है। सन्त कबीर के शब्दों में—

जिस मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द,
बिन मरने क्यों पाइए, पूर्ण परमानन्द।

एक तत्त्वदर्शी के लिये मृत्यु का क्षण ही मोक्ष का मंगलमय पर्व है। भगवान् शिव सन्तों को मोक्ष एवं दुष्टों को मृत्यु प्रदान करने वाले हैं।

शिवशक्ति लीला

शिव एवं उसकी शक्ति भी प्रकृति एवं पुरुष के समान एक होते हुए भी दो भासमान होते हैं। माया तथा महेश्वर की मूलभूत एकता का स्तवन करते हुए महाकवि कालिदास ने रघुवंश के प्रथम श्लोक में शिव तथा शक्ति को वाणी तथा अर्थ के समान भिन्न-2 प्रतीत होते हुए भी, अभिन्न माना है। गोस्वामी तुलसीदासजी मानस के प्रारम्भ में शिव तथा शक्ति की वन्दना श्रद्धा तथा विश्वास के रूप में करते हैं जिसमें दृश्यमात्र के उपरान्त भी अभिन्न सुन्दर रूपक से समूचे भारत की विराट कल्पना की गई है। भारत के चरणों में 'कन्याकुमारी' है जो वहाँ से ऊपर उठकर भारत के शीर्षस्थान पर स्थित कैलासधाम वासी भगवान् शिव से मिलना चाहती है। इसी मिलन को रहस्यवादी साधकों ने आध्यात्मिक विवाह माना है। योग की परिभाषा में शिव एवं शक्ति नाद एवं बिन्दु है। इन दोनों के संयोग से ही सारी सृष्टि सम्भव होती है। 'यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे' न्याय से जो ब्रह्मांड में सत्य है वह शरीर में भी सत्य है। मानव देह में उसका शीर्ष ही कैलासधाम है जहाँ ब्रह्मरंध्र तथा सहस्रदल कमल है वहीं शंकर का निवास है। शरीर के मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) की पर्वत से उपमा दी जाती है, जिसके सहारे हमारी कुण्डलित (सुप्त) शक्ति, (पर्वत की पुत्री पार्वती) धीरे-धीरे तपस्या के बल से ऊपर कैलास की ओर उठती जाती है, अष्टकमल को पार कर, काम-क्रोधादि को पराजित कर वह कैलासवासी शिव से मिल जाती है। हठयोग तथा अष्टांग योग के अनुसार यही शिव और शक्ति का दिव्य मिलन है।

आत्मा-परमात्मा का पुनर्मिलन

सांकेतिक अर्थ में आत्मा एक सती के समान भगवान् की पूजा में संलग्न थी। बुद्धि ने तर्क-वितर्क करना आरम्भ किया। बौद्धिक क्षमता का प्रतीक 'दक्ष' भगवान् शिव को भूल गया। आत्मा अपमान से आग-बबूला हो उठी। दक्ष का यज्ञ विध्वंस हुआ। आत्मा ने पुनः तप किया। अब कामदेव ने विघ्न डालना चाहा।

वह ईश्वरीय कोप से जल गया। अन्त में आत्मा-परमात्मा का आध्यात्मिक विवाह ही शिव-पार्वती के पावन परिणय के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

स्वरूप की व्याख्या

भगवान् शिव त्रिशूलधारी हैं। वे एक ही प्रहार से तीन प्रकार के शूलों को नष्ट करने वाले हैं। उनके त्रिशूल पर तीन लोक अवस्थित हैं। त्रिकों में तो सारी सृष्टि बंटी हुई है। 3 वेद, 3 देव, 3 योग, 3 गुण, 3 ताप इत्यादि। त्रिपुरासुर के तीनों पुरों को एक ही प्रहार से ध्वस्त करने वाले भगवान् शिव त्रिपुरारि हैं। वे तीन राक्षस काम, क्रोध तथा लोभ हैं अथवा योग की भाषा में वे स्थूल शरीर, सूक्ष्मशरीर और कारण शरीर हैं। तीनों के एकसाथ नष्ट हुए बिना मुक्ति सम्भव नहीं। शंकर त्रि-नेत्रधारी हैं—सूर्य, चन्द्र, अग्नि—पृथ्वी, आकाश, पाताल भू, भुवः, स्वः के सूचक हैं। उनके डमरु की ध्वनियों से सारे संस्कृत स्वरों एवं व्यंजनों की उत्पत्ति हुई है। उनके मस्तक पर सुशोभित शशिरेखा ब्रह्मज्योति की प्रतीक है। शीश पर भागीरथी मुक्ति की सुधाधारा की परिचायक है। व्याघ्रचर्म पशुता पर विजय की परिचायक है। सर्प भूषण कालविजय का प्रतीक है। क्रोध रूपी विष को पचाने के कारण वे नीलकण्ठ हैं। उन्हें त्रिलोचन, त्र्यंबक, शंकर, हर, शंभु, सदाशिव, विश्वनाथ, अर्धनारीश्वर, दिगंबर व दक्षिणामूर्ति इत्यादि कई नामों से पूजा जाता है।

ऐतिहासिक महापुरुष शिव

पं. भगव दत्त रिसर्च स्कालर के मतानुसार वेदों में शिव, शंकर, शर्व आदि शब्द परब्रह्म के विशेषण हैं किन्तु इतिहास पुराण में ये नाम एक ऐतिहासिक महापुरुष के हैं। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार माता सुरभि और कश्यप प्रजापति के ग्यारह पुत्र थे। इन्हें एकादश रुद्र कहा जाता है। इनमें से एक शिव थे। शिव के एक भाई नाग थे। उनसे नाग जाति का आरम्भ हुआ। यही नाग जाति, नागा जाति के नाम से कैलास की बायीं ओर असम के पर्वतों में बसी हुई है, नागपुर भी नागों का पुर है। डॉ. कालिदास नाग जैसे विद्वान मनुष्य ही हैं सर्प नहीं। शिवजी सारे भाइयों से अधिक तपस्वी, तेजस्वी, ज्ञानवान, समर्थ एवं दीर्घजीवी हुए। उनके तप की आश्चर्यजनक घटनाएं संस्कृत ग्रन्थों में भरी पड़ी हैं।

माता सुरभि का देश अफगानिस्तान से परे और फारस के नीचे था। शिवजी का जन्म वहीं का माना जाता है। कैलास उनके तप का स्थान था। वे भारत के अनेक स्थानों में घूमते रहे। उनकी बहुत लम्बी आयु के कारण लोगों का विश्वास है कि शिवजी आज भी जीवित हैं तथा कैलास में विचरते हैं।

पुराणों के अनुसार ब्रह्माजी के दिए हुए ज्ञान का सार-संक्षेप भगवान् शिव ने मानवता को दिया। अतः वे ज्ञान के गुरु हुए। उनका शास्त्र राजनीति के तत्त्वों से

परिपूर्ण है। उसे 'विशालाक्ष शास्त्र' कहते हैं। साधारण मनुष्य के दो आँखें होती हैं। उनकी तीसरी विशाल आँख थी, जिससे वह राजनीति के गहरे तत्त्वों को देखते थे। कौटिल्य ने भी विशालाक्ष शास्त्र का उल्लेख किया है।

शिवजी के गण नन्दी उनके प्रिय शिष्य थे तथा महान् विद्वान मनुष्य थे। उन्होंने कामशास्त्र का सम्पादन किया जो बाद में वात्स्यायन के हाथों जनता को मिला।

शिवजी ने लोक को पारद विद्या दी। पारद का अर्थ पार ले जाने वाला है इससे आयु लम्बी होती है। यह एक रस विद्या है। रसार्णव तन्त्र में इसका वर्णन है। गुरु गोरखनाथ ने भी शिव की तरह इसके प्रयोग से लम्बी आयु प्राप्त की। शिवजी पाशुपतास्त्र जैसे उस युग के एटम बम के भी आविष्कर्ता थे। अर्जुन ने शिवजी से वह अस्त्र प्राप्त कर जयद्रथ वध के समय उसका प्रयोग किया था। शिवजी ताण्डव नृत्य के आविष्कर्ता थे। अतः वे नटराज कहलाए। अमृत मन्थन के समय शिवजी ने पारद के योग से विष का प्रभाव गले से नीचे नहीं उतरने दिया, विष से कण्ठ नीला हो जाने से वे नीलकण्ठ कहलाये।

सारस्वत, मण्ड, दैत्य, कैवर्त, किरात, नाग, भूत-पिशाच आदि जातियों में शिव की पूजा प्रचलित थी अतः शिव के नाम भी इन्हीं के सम्बन्ध से दैत्य नाथ, किरात, नागपति, भूतनाथ इत्यादि पड़ गए। पिशाच जाति की पिशाची भाषा का रूपान्तर पश्तो भाषा है। पं. भगवद दत्तजी के मतानुसार महाभारत के युद्धकाल में मोहंजोदारो में शिवोपासक असुर जाति रहती थी। पुरातत्त्व विभाग दिल्ली के अध्यक्ष श्री रामचन्द्र के मतानुसार मोहंजोदारो की सिन्धुघाटी सभ्यता शुद्ध रूप से वैदिक सभ्यता थी तथा वहाँ के पशुपति का चित्र वैदिक आधार पर है।

काश्मीर में अभिनव गुप्ताचार्य ने शैवधर्म का बड़ा प्रचार किया। मद्रास तथा श्रीलंका में शिव पूजा प्रचलित हुई। सारे इंडोनेशिया में शिव तथा बुद्ध की मूर्तियाँ साथ-साथ हैं।

वेदों में शिव

वेद में शिव रुद्र नाम से प्रतिष्ठित हैं किन्तु शिव नाम भी बहुत बार आया है। ब्रह्म की वन्दना में कहा है 'शांतं शिवम् अद्वैतम्।' यजुर्वेद 12/17 में गाया है—

शिवोभूत्वामद्यमग्ने अथोसीद
शिस्त्वम शिवाः कृत्वाः
दिशः सर्वाः रच योनिमिहासदः।

पुनः 11/45 में कहा है। शिवो भव प्रजाभ्यो अर्थात् अपनी प्रजाओं के लिए कल्याणकारी बने। वेद में प्रयुक्त रुद्र शब्द कहीं शिव के लिए, कहीं अग्नि

के लिए, कहीं तेज और वायु के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होने वाले दो शब्द 'व्रात्य' एवं 'शिश्नदेव' पर अभी तक विद्वानों में पर्याप्त विवाद है। किन्तु विश्व की सर्वप्राचीन पुस्तक ऋग्वेद में जिस मंगलमय शिव की वन्दना की गई है उसी भगवान् शंकर के चरणों में शीश नवाकर हम विश्व भर के मंगल की कामना से वैदिक ऋषि के कण्ठ में कण्ठ मिलाकर ही गाते हैं—

नमः शम्भवाय च, मयोभवाय च,
नमः शंकराय च, मयस्कराय च,
नमः शिवाय च, शिवतराय च।।

हे प्राचीन भारत भूमि! हे मानव जाति का पालन करने वाली! हे पूजनीया! हे पोषणदात्री! तुझे नमस्कार है। शताब्दियों से लगातार चलने वाले पाशविक अत्याचार आज तक तुझे नष्ट नहीं कर सके, तेरा स्वागत है। हे श्रद्धा, प्रेम, कला और विज्ञान की जन्मदात्री, तुझे नमस्कार है।

—एम. लुई जेकोलियट

× × ×

दर्शन के क्षेत्र में एक-धारा विशेष के प्रवर्तक विक्टर कजिन ने लिखा—'जब हम पूर्व के और खासकर भारत के काव्य या दार्शनिक चिन्तन के आन्दोलनों का, जिनका प्रभाव अब यूरोप में भी फैलता दिखाई दे रहा है, ध्यान से अध्ययन करते हैं तो हमें वहाँ इतने अधिक और इतने गहरे सत्यों का साक्षात्कार होता है कि हम पूर्व की प्रतिभा के सामने घुटने टेकने के लिये विवश हो जाते हैं और यह माने बिना नहीं रह सकते कि मनुष्य-जाति के पालने जैसी यह भूमि उच्चतम दार्शनिक चिन्तन की जन्मभूमि है। यूरोप की प्रतिभा जिन परिणामों तक पहुँचकर रुक गयी है उनकी क्षुद्रता और पूर्व की प्रतिभा द्वारा प्रकाशित इन सत्यों के महदन्तर को देखकर सचमुच आश्चर्य होता है।'

भगवान् गणपति के स्वरूप का विवेचन

गणपति गणेश के पौराणिक रूपक के आधार पर निर्मित भगवान् गणेश की मूर्ति को देखकर आज का बुद्धिवादी मानव सम्भवतः बड़ा विस्मय करेगा। क्योंकि मानव के शरीर तथा गज के मस्तक वाला जीव आज तक जीव विज्ञान की प्रयोगशाला में नहीं देखा गया है। इसलिए तर्क के आधार पर आज का शिक्षित मानव गणेश को केवल मानवीय कल्पना से प्रसूत एक खिलौना मात्र मान कर उसका उपहास भी करने लगता है। जिस देवता को मानव अपनी कल्पना मात्र से स्वयं पैदा करता है वह मानव की प्रार्थना सुन कर उसके विघ्नों का निवारण कैसे करेगा। विदेशियों तथा विधर्मियों ने भी भारतीयों को धर्मच्युत करने के लिए हमारे गणपति पर तीक्ष्ण व्यंग्य किए।

कुछ विद्वानों ने आर्य एवं द्रविड़ संस्कृतियों के परस्पर संघर्ष की भूमिका में गणेश को द्रविड़-देवता माना। श्री दिनकर तथा बाबू सम्पूर्णानन्द ने भी गणेश को आर्येतर देवता माना जो बाद में आर्यों द्वारा भी पूजा जाने लगा। किन्तु शुक्ल यजुर्वेद में गणपति की स्तुति बड़ी अद्‌भुत है—

गणानांत्वा गणपतिं हवामहे,
प्रियाणांत्वा प्रियपतिं हवामहे।
निधिनांत्वा निधिपतिं हवामहे वसोमम्,
आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्।।

जिस गणों के गणपति, प्रियों के प्रियपति, निधियों के निधिपति गणेश की अर्चना करते हुए वैदिक ऋषि हवि समर्पित कर रहे हैं, वह गणेश आर्य देवता ही हैं।

अलंकारिक रूपक

गणेशजी की कथा एवं स्वरूप में रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है। सारी कथा बड़े काव्यात्मक ढंग से गाई गई है। काव्यमय रूपक को जैसे का तैसा तथ्य मान लेने से पुराणकार का अभिप्राय हमें कभी प्राप्त नहीं हो सकेगा। परमतत्त्व का सीधे वर्णन नहीं किया जा सकता, अलंकार का सहारा लेना आवश्यक

है। अलंकार से बात वैसे भी सुन्दर बन जाती है, चमत्कारपूर्ण हो जाने से हमें आनन्दपूर्ण विस्मय होता है जनसाधारण की जिज्ञासा को भी तृप्ति मिलती रहती है, बाल बुद्धि वाले लोगों के लिए वह एक रुचिकर कहानी बन जाती है, और विचारवान लोग रूपक के भेष के पीछे छिपे हुए तत्त्व के भी दर्शन कर लेते हैं।

सामाजिक तत्त्व दर्शन

पुण्यश्लोक डॉ. भगवानदास ने गणेशजी की कथा का सामाजिक अर्थ लगाया है। पुराणकथा के अनुसार एक बार शिव कहीं बाहर घूमने गए। पीछे पार्वती ने स्नान करते समय अपने शरीर पर उबटन मली। उस मैल भरी उबटन का उसने एक पुतला बना दिया। वह पुतला उसे भला लगा। उसने उसमें प्राण फूंक दिया और उसे बाहर द्वार पर रक्षा करने के लिए खड़ा कर दिया। बाहर से शिव आए। गणेशजी ने उन्हें रोका। इस पर क्रुद्ध होकर शिवजी ने अपने त्रिशूल के प्रहार से उसका शीर्ष काट दिया। बाद में पार्वती के विलाप पर भगवान् विष्णु आए, नारदजी भी बीच-बचाव के लिए आए। तब विष्णु ने एक गज का मस्तक काट कर उस पुतले के ऊपर लगा दिया तथा उसे आशीर्वाद दिया कि सब देवताओं में सबसे पहले तुम्हारी पूजा होगी।

डाक्टर भगवानदास का मत है कि शिव और पार्वती सम्भवतः दो जातियों के नाम है। शिव जाति मैदानी तथा सभ्य जाति थी और पार्वती जाति पहाड़ी तथा अर्ध-सभ्य जाति थी। प्रायः मैदानी जातियों का पिछड़ी हुई पहाड़ी जातियों पर प्रभुत्व रहता है। एक बार पार्वती जाति ने विचार किया कि हमें अब शिव जाति का आधिपत्य स्वीकार न करके, अपना नेता आप चुन लेना चाहिए। उन्होंने अपने ही ग्रामीण पहाड़ी समाज शरीर के भीतर से ही जैसा-तैसा एक मैलयुक्त नेता चुन कर खड़ा कर दिया। उसे कोई गणेश नहीं कहता था। वह तो पार्वती जाति का ही पुत्र, पहाड़ी जाति का नेता बन गया। पर वह था असभ्य, उद्दंड और गर्वीला। घमण्ड में भर कर उसने बड़ी अशिष्टता से शिव का मार्ग भी रोक दिया। जिस का अभी तक शासन चलता था, एकाएक उसके शासन को चुनौती मिलने पर वह तिलमिला उठता है। शिव ने क्रोध में उसका शीर्ष काट दिया। यह मैदानी जाति द्वारा पहाड़ी जाति की उद्दण्डता का उचित दंड था। वैसे भी शिव (कल्याण) का मार्ग रोकने वाले का शीर्ष कट ही जायेगा चाहे वह स्वयं गणपति ही क्यों न हो। किन्तु विचारने की बात यह है कि तब तक वह केवल मल का पुतला था उसे गणेश या गणपति नहीं माना गया था। अतः शीर्ष गणेश का नहीं, गणेश बनने से पूर्व जो मैल का पुतला, नेतागिरी का घमण्ड कर रहा था, उसका कटा। अतः आज के घासलेटी नेताओं के लिए भी एक चेतावनी है कि यदि वे जिस जाति ने उन्हें नेता का सिंहासन दिया है उस जाति के पूज्य आदर्श, पार्वती के पति (शिव अथवा जनकल्याण) का ही तिरस्कार करने लगेंगे, तो उन मैल के पुतलों का घमण्ड से अकड़ रहा शीर्ष कट

जाएगा। ऋषियों ने अत्याचारी राजा वेन को गद्दी से उतार कर तथा घमण्डी राजा ययाति को स्वर्ग से भी नीचे गिरा कर इसी मर्यादा का पालन किया है। पुतले का शीश कटने से पश्चात् पार्वती जाति का मोह के कारण विलाप भी स्वाभाविक है, किन्तु अपने ही आदर्श (शिव) का स्मरण होने से मोह दूर हुआ। नारदजी दोनों पक्षों को उकसाने वाले तथा अन्त में जनहित की रक्षा के लिए समझौता कराने वाले प्रसिद्ध पौराणिक चरित्र हैं। डॉ. भगवानदास ने उन्हें आजकल के पत्र-प्रतिनिधियों का तत्कालीन प्रतीक माना है जो अपने समाचार पत्र के लिए गर्मागर्म खबरें एकत्र करने के लिए सर्वत्र घूमते रहते थे। शिव का शासन तो पार्वत्य प्रदेश में (नागदेश, गन्धर्वदेश, भूटान देश, असम देश, किन्नर देश, गांधारदेश इत्यादि में) था, किन्तु विष्णु त्रिलोकी के स्वामी थे। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के मत में प्राचीनकाल में तिब्बत ही स्वर्ग था, हिमालय के अंचल के प्रदेश गन्धर्व, यक्ष, किन्नरों के देश थे, आर्यावर्त्त भूलोक था तथा दक्षिण भारत पाताल था। अतः स्वर्ग (तिब्बत) का राजा (उस काल का दलाईलामा) इन्द्र कहलाता था तथा भारत भर का स्वामी विष्णु था। किसी प्रदेश या छोटे गणराज्य में झगड़ा हो जाने पर राष्ट्रपति ही निबटाते हैं। अतः विष्णु ने यह समझौता कराया कि पार्वती जाति को स्वतन्त्रता प्रदान की जाय। पर, वह शिव के आशीर्वाद से ही स्वतन्त्र रहे, शिव का तिरस्कार करके नहीं। कहा जाता है कि उस पुतले पर गज का मस्तक लगा कर पार्वती गणराज्य के एक आदर्श नेता गणपति का स्वरूप निश्चित किया गया। मैल का पुतला नष्ट होकर अब गणेश सच्चे नेता बने, पर उन्होंने अस्तित्व में आते ही प्रथम नमस्कार शिव और पार्वती के चरणों में किया। शिव ने स्वयं उन्हें सब गणों का अधिपति, गणों का ईश, विनायक बनाया तथा स्वयं घोषणा की कि समस्त देवताओं में सर्वप्रथम पूजा उन्हीं की होगी।

सेनापति का स्वरूप

हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् श्री गोपालचन्द्र देव से बातचीत के मध्य में यह विचार खुला कि पार्वती का नाम गिरिजा केवल गिरि (पर्वत) से उत्पन्न होने के कारण नहीं, उसका गिरा (गिरि) वाणी से भी है। अतः 'पार्वती' सेना को मिलने वाले आदेशों का नाम है जो पहाड़ की तरह गड़गड़ाने वाले हैं। स्वधा, स्वाहा एवं वौषट ऐसे ही आदेश हैं जो ओजपूर्ण वाणी में उच्चारे जा सकते थे। वौ.....षट, जैसे आजकल एटेन.....शन। गणपति सेना के भिन्न-भिन्न गणों के नायक हैं। अतः वे सब गणों में सब से पहले पूजा के पात्र हैं। वे आदर्श सेनापति हैं।

गणराज्य के प्रमुख : गणपति

गणेशजी के सभी नाम उनके गुणों को प्रदर्शित करते हैं। गणों का ईश, गणों का पति, गणनायक, विनायक, नायक सभी नाम गणपति के सर्वोच्च नेता, गणपति या राष्ट्रपति के हो सकते हैं। प्राचीन काल में भी भारत में अनेक गणराज्य थे। जनहित के

लिए जनता का शासन ही गणराज्य (रिपब्लिकन) कहलाता है। उसके नेता को सदा दूरदर्शी, विशाल मति, सुदृढ़ शासक, विनयी तथा वीर होना चाहिए। गणेशजी में ये सभी गुण हैं। इसीलिए वे ऋद्धि और सिद्धि नामक दो पत्नियों के स्वामी बने।

श्री गणेशाय नमः

प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ में गणेशजी की वन्दना की जाती है। महाभारत के लेखक श्री गणेशजी ही हैं। कुछ भी लिखने से पहले ऊपर श्री गणेशाय नमः लिखा जाता है। प्रत्येक शुभ कार्य के प्रारम्भ को ही श्रीगणेश कहते हैं। श्री काका कालेलकर का मत है कि सम्भवतः 'लिपि' के आविष्कारक कोई गणेश नामधारी महापुरुष हुए होंगे। इसीलिए कुछ भी लिखते समय पहले उन्हें श्रद्धांजलि दी जाती है।

आदर्श नेता का स्वरूप

गणेशजी का गज मस्तक (बड़े से बड़े जीव का मस्तक) बुद्धिमानी का सूचक है। सूप जैसे बड़े-बड़े कान संदेश देते हैं—'सुनो सब की करो अपनी।' एकदन्त निश्चयात्मिका बुद्धि का सूचक है। लम्बोदर होने से बड़े-बड़े भेदों को पेट में ही पचा लेता है। हाथी की सूक्ष्म आँखें दूरदर्शिता की शिक्षा देती हैं। मानव शरीर होने से नेता का हृदय मानव का होना चाहिए। उनका वाहन चूहा तर्क-कुतर्क करने वाला है। ऐसे तत्त्वों को नेता शरण भी दे पर वाहन बना कर वश में रखे। उन के चार हाथ चार पदार्थों के दाता हैं। गणपति के चार हाथों में शासन के चार प्रमुख भाग हैं। जिन के बिना कोई राज्य नहीं चल सकता। अंकुश सेना सुरक्षा विभाग का द्योतक है। कमल में वित्त मंत्रालय (कमला, लक्ष्मी) प्रतिबिम्बित है। रज्जु न्याय का प्रतीक है और मोदक के मिष्टान्न में खाद्य मन्त्रालय की सुन्दर व्यवस्था का संदेश है। गणपति की सूण्ड मुड़ कर उनके अपने ही कान के पास जा रही है। नेता दूसरों को उपदेश करने से पूर्व अपने आपको उपदेश देवें। ऐसा नेता ही आदर्श नेता है। उन्हीं पूर्ण नेता तथा आदर्श गणपति के निमित्त हमारी प्रथम वन्दना समर्पित हो—श्री गणेशाय नमः।

भारत मानव जाति की उत्पत्ति का झूला है। मानवीय भाषा की जननी है, इतिहास की जननी, पुराणों की पुरा-जननी तथा प्रथाओं की दादी माँ है।

—मार्क ट्वैन

भगवान् गणपति

काल के अनन्त प्रवाह में वर्ष के निरन्तर गतिमान तटों के बीच में मासों, पक्षों और दिनों के अस्थिर घाटों पर उत्सवरूपी जंगमतीर्थ तैरते हुए आते हैं और अपना रहस्यमय सन्देश दे कर शीघ्र ही चले जाते हैं। भाद्रपद मास की शुक्ला चतुर्थी आई है। हिमालय से कन्याकुमारी तक भारत के कोटि-कोटि नर-नारी इस दिन विघ्नहारी, विनायक-गणपति, गणेश का पावन स्मरण, पूजन-अर्चन इत्यादि करते हैं। महाराष्ट्र में जब से लोकमान्य तिलक ने इस महान् पर्व का पुनरुद्धार किया तब से लगभग दो सप्ताह भर का लम्बा उत्सव मनाया जाता है। दक्षिण भारत में तो गणेशजी की बड़ी-बड़ी विशालकाय प्रतिमाएँ बना कर उनका पूजन होता है। भारत के शेष प्रान्तों में भी सर्वत्र गणेशजी के पूजन का पर्व मनाया जाता है।

लाखों, करोड़ों लोग जिस कार्य को श्रद्धा से करते हों उस में क्या कोई रहस्य भी है अथवा केवल अन्धविश्वास का चमत्कार है?

हर सुपठित भारतीय की प्रज्ञा को यह एक चुनौती है। उत्तर बड़ा सोच-विचार कर देना होगा।

श्री पी. वी. रामचन्द्रराव का कथन है कि विनायक कोई वैदिक देवता नहीं है। ये सर्वप्रथम द्रविड़ों के देवता थे और पिल्लैयर नाम से प्रसिद्ध थे। जब आर्य अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुए तब विनायक को भी उन्होंने अपना देवता बना लिया और इस प्रकार ये समस्त हिन्दू जाति के देवता बन गये। वे पुनः लिखते हैं कि 'हजारों वर्षों तक ये खेतों की फसल के देवता माने जाते थे और विशाल अश्वत्थ वृक्ष की छाया में रखी प्रस्तर प्रतिमा के रूप में इनकी पूजा होती थी। फिर ये गण हुए और अन्त में गणों के नायक गणपति हुए।' श्री रामधारीसिंह दिनकर ने अपने ग्रन्थ संस्कृति के चार अध्याय में कहा है कि 'गणेश की कल्पना शुद्ध भारतीय मालूम होती है (किन्तु शुद्ध आर्य नहीं)। क्योंकि आर्य जिस देश से यहाँ आए थे; उस देश में हाथी होते ही नहीं हैं।' सम्भवतः श्री दिनकर अभी तक इसी युग में है, उनके पूर्वज आर्य मध्यएशिया से भारत में आए थे। बाबू सम्पूर्णानन्द आर्यों का आदि स्थान तो सप्त-सिन्धु प्रदेश (वर्तमान पंजाब तथा सिन्धु प्रान्त) को ही

मानते हैं किन्तु गणपति (गणेश) के विषय में उनका मत भी भ्रम से मुक्त नहीं है। उनका कहना है—'वेदों में तो गणेशजी हमें नहीं मिले परन्तु पुराणों में उनकी सर्वत्र चर्चा है। आर्य लोग गणेश का अस्तित्व नहीं जानते थे। जब वे पूर्व की ओर बढ़े तो उनका अनार्यों से सम्पर्क बढ़ा तो बहुत से अनार्य आर्य बस्तियों में बस गये। विजित पर तो विजेता की संस्कृति का रंग चढ़ा ही परन्तु विजेता भी अछूता नहीं बच सका।

उपरोक्त मतों के मुकाबले में शुक्ल यजुर्वेद में गुंजरित निम्नलिखित मन्त्रों में की गई गणपति-स्तुति विचारणीय है—

गणानांत्वा गणपतिं हवामहे, प्रियाणांत्वा प्रियपतिं हवामहे। निधिनांत्वा निधिपतिं हवामहे वसोमम्, आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्।।

इससे निर्भ्रान्त सिद्ध होता है कि कम से कम 'गणपति नाम' तो वेद-मूलक है। गणेशजी के सारे नाम गणेश, गणपति, गजानन, विनायक, विघ्नेश, विघ्नहर, हेरम्भ इत्यादि वेद-मूलक आर्य एवं संस्कृत भाषा के हैं, द्रविड़ भाषाओं के नहीं। यदि गणेश आर्य एवं द्रविड़ संस्कृतियों के समन्वय के प्रतीक हैं तो भी वे भारत की एकता के सजीव अवतार हैं। आज का हिन्दू धर्म भी अनेक द्रविड़ एवं आग्नेय प्रभावों को आत्मसात् किए हुए है। तिलक, कुंकुम, शंख, ध्वनि, आरती, कर्मकाण्ड आर्येतर होते हुए भी आर्य धर्म की सहस्र धारावाहिनी भागीरथी में लीन हो चुके हैं। फिर ज्ञान तथा आलोक के क्षेत्र पर किस का एकाधिकार है? जिस भी प्रतीक से श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त हो तथा मानव सिद्धि के मार्ग पर कुछ पग आगे बढ़ सके, वही ग्राह्य है।

सामाजिक अर्थ

गणेश कथा का एक महान् सामाजिक सन्देश है 'शिव' (कल्याण)। प्रतिरोध करने वाले का शीर्ष अवश्य कटेगा चाहे वह स्वयं गणपति ही हो। गणेश पार्वती जाति के नेता बने थे। उस पहाड़ी जाति के गणराज्य के नेता, गणपति जब गर्व में भर गए तो उन्होंने कल्याण का मार्ग रोक रखा। शीर्ष-छेदन के पश्चात् समझौता कराने को नारदजी पहुँचे, जो उस काल में आज के पत्र-प्रतिनिधियों के प्रतीक थे। हर झगड़े में पत्र के लिए गर्मागर्म खबरें मिल सके इस भाव से सर्वत्र विचरते थे। भगवान् विष्णु स्वयं मध्यस्थ बने। निश्चय हुआ कि एक हाथी का शीर्ष लगा कर उस नेता को सबसे पहले पूजा जाए।

आदर्श नेता

गजवदन बनने के पश्चात् गणपति सब से प्रथम पूजा के पात्र बने। गणेशजी के अधिकतर नाम उनके गुणों को प्रदर्शित करते हैं। गणों का ईश, गणों का पति, गणनायक, विनायक, नायक सभी नाम गणराज्य के सर्वोच्च नेता, गणपति या राष्ट्रपति के हो सकते हैं।

गणपति समस्त गुणों के प्रतिनिधि होने के कारण सर्वग्राही हैं। सारे समाज की श्रद्धा का केन्द्र वही हैं। वे विद्या एवं बुद्धि का भण्डार हैं। वह राष्ट्र के अनेक देवताओं (विभागों के मन्त्रियों इत्यादि) के सरदार हैं। वह प्राचीन गणराज्यों की लोकसभा के देवता (अध्यक्ष) के रूप में माने जा सकते हैं। वह समाज की आत्मा का प्रतीक हैं। अतः सर्वप्रथम पूज्य हैं।

गणपति का स्वरूप

गज मस्तक—(बड़े से बड़े जीव का मस्तक) बुद्धिमानी का सूचक है। बड़े-बड़े कान सन्देश देते हैं सुनो सब की करो अपनी।

एकदन्त—निश्चयात्मिका बुद्धि का द्योतक है।

लम्बोदर—यह प्रकट करता है कि नेता को बड़े-बड़े भेदों को अपने पेट में ही लील लेना चाहिए। सूक्ष्म आँखें दूरदर्शिता की शिक्षा देती हैं। मानव का शरीर यह प्रकट करता है कि नेता का हृदय मानव का होना चाहिए। कन्धे का जनेऊ ब्रह्मचर्यव्रत का परिचायक। उनका वाहन चूहा तर्क-कुतर्क करने वाला है ऐसे तत्त्वों को नेता शरण दे पर वाहन बना कर वश में रखे। उनके हाथ चार पदार्थों के दाता हैं। गणेशजी पूर्ण नेता एवं आदर्श गणपति हैं।

विदेशों में पूजा

भारतीय संस्कृति के प्रसार के साथ ही हमारे गणेशजी ने भी पृथ्वी की परिक्रमा की है। इण्डोनेशिया में गणेशजी के मन्दिर तो अनेक हैं ही। आज तक वहाँ के राजाओं के गले में गणेशजी की छोटी-सी सोने की मूर्ति लटकती हुई भारतीयता की विजय सूचित करती है। अमरीका में, मैक्सिको, बोलिविया इत्यादि प्रदेशों में हजारों मन्दिरों में गणपतिजी के चित्र मिले हैं। चीन में भी गणपति प्रतिष्ठित हैं। बौद्धधर्म की महायान शाखा में तो गणपति पूजा का खुला विधान किया है। बर्मा में महापियेन नाम से गणपति पूजा होती है। तुर्किस्तान में गणेशजी की दो प्रतिमाएँ मिली हैं। तिब्बत के प्रायः सभी मठों में गणेश पूजन चलता है। बाली द्वीप में गणपति पूजन के बिना कोई शुभ कार्य नहीं होता। जर्मनी के राष्ट्रीय झण्डे पर स्वस्तिक का चिह्न अंकित था। स्वस्तिक को यूनान में यूनानी क्रास भी कहते हैं। ईसाइयों का क्रास भी स्वस्तिक का रूपान्तर है। स्वस्तिक चिह्न जैन धर्म में भी पवित्र माना गया है। इंडोनेशिया की जकार्ता के रेलवे स्टेशन के बाहर गणेशजी की एक विशाल मूर्ति बहुत ऊँचे मंच पर स्थापित है। विद्वानों का मत है कि प्राचीन मिस्र में गणेश कथा से मिलती-जुलती कथाएँ प्रचलित थीं तथा गणेश पूजा चलती थी। आज गणेश चतुर्थी के दिन उन्हीं देश का नेतृत्व करने वाले तथा विश्व भर में भारतीयता का संदेश लेकर पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले भगवान् गणपति (गणेश) को हमारी कोटि-कोटि वन्दनाएँ समर्पित हों।

बिहार की धर्म, संस्कृति, दर्शन और कला के क्षेत्र में देन

एक दृष्टिकोण से संस्कृति शब्द बहुत बड़े व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। भारतीय संस्कृति के चार आधारभूत जीवन-मूल्यों—पुरुषार्थ चतुष्टय के अंतर्गत धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में धर्म संस्कृति के अंग के रूप में परिगणित होता है। धर्म निष्काम कर्तव्य साधना तथा अध्यात्म साधना के रूप में संस्कृति का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। भगवान वेदव्यास ने कहा है, **धर्मादर्थश्च कामश्च सकिमर्थं न सेव्यते॥** म. भा. स्वर्गारोहण पर्व 5/62 अर्थात् धर्म से ही काम और अर्थ की प्राप्ति होती है और मोक्ष की तो होती ही है, तब फिर भी दुर्योधन तुम धर्म का सेवन क्यों नहीं करते? इस दृष्टिकोण से धर्म संस्कृति सारसर्वस्व और चारों पुरुषार्थों का मूल, भारतीय समाज रचना का केन्द्रीय तंतु सिद्ध होता है।

धर्म का एक और भी व्यापक अर्थ है जिसमें जो कुछ भी समाज को धारण करने के लिये आवश्यक नियम-उपनियम हैं सभी धर्म शब्द के अंदर समा जाते हैं। जैसे हमारे धर्म-शास्त्रों ने दंतधावन, क्षौर्य कर्म, मूर्ति तक्षण्, भवन निर्माण, गृहप्रवेश, शाला प्रवेश, व्यापार, लक्ष्मी पूजा, राजधर्म, दूतकर्म, धर्मयुद्ध, कालधर्म वरन् चौर्य धर्म तक को, सभी को धर्म की व्यापक गोदी में स्थान दे दिया है। जीवन की किसी भी दिशा को धर्म के अंतर्गत रख दिया गया है। चाहे संप्रदाय शब्द एक विशिष्ट पूजा पद्धति या साधना-पद्धति का परिचायक होने से धर्म से कम व्यापक है, किन्तु भारत में किसी संप्रदाय का धर्म के व्यापक अर्थ से आधारभूत मतभेद या द्वेष न होने के कारण यहाँ पंथों और संप्रदायों को भी धर्म जैसा सम्मानसूचक नाम दे दिया गया है, जैसे—जैन धर्म, बौद्ध धर्म, वैष्णव धर्म, शैव धर्म आदि।

धर्म जिस परम सत्य को भावना और साधना द्वारा पाना चाहता है दर्शन उसी परम सत्य की बौद्धिक तर्कसम्मत व्याख्या प्रस्तुत करता है। दर्शन बताता है सत्य क्या है? कैसा है? किन्तु सत्य की उपलब्धि नहीं करता या कराता, यह बिल्कुल संभव है कि सत्य पर हजारों पृष्ठों का शोधग्रंथ लिखने वाला Philosopher स्वयं पहले दर्जे का झूठा और बेईमान हो। यम-नियम के पालन द्वारा तन, मन, बुद्धि को

पवित्र कर निष्काम कर्म-साधना, भक्ति उपासना, ज्ञान-साधना, योग-साधना द्वारा सत्य का साक्षात्कार अर्थात् सत्य ही बन जाने की चेष्टा धर्म द्वारा ही संभव है।

कला अमूर्त सत्य को सुंदर-मूर्त रूप में प्रस्तुत करने की साधना है। जब सत्यम् शिवम् का रूप धारण कर जन-जन का कल्याण करने को आतुर हो उठता है तब समाज धर्म कहलाता है, जब वही सत्यम् सुंदरम् का चोला पहनकर नृत्य करने लगता है तब काव्य और कला के रूप में पूजित होता है। सभी ललित कलाएँ संस्कृति की विद्याओं के रूप में मानी जाती हैं। कला का अर्थ है सुंदर। किसी भी विषय को सुंदर रीति से प्रस्तुत करने को कला कहा जा सकता है। चन्द्रमा की ज्योति के एक-एक दैनिक अंश को चन्द्रकला कहा जाता है। पूर्णिमा को अपनी पूर्ण कलाओं से चमकता है। देवताओं या अवतारी पुरुषों में उनके भग (प्रकाश) को भी कला कहा जाता है। जैसे भगवान कृष्ण को षोडश कला-संपन्न कहा जाता है। प्रत्येक कला किसी न किसी विज्ञान के आधार पर प्रतिष्ठित होती है। संगीत कला के पीछे ध्वनि विज्ञान का सिद्धांत है, मूर्तिकला या चित्रकला के पीछे धातु विज्ञान, पाषाण विज्ञान, रेखा विज्ञान, रंग विज्ञान का आधार है। यदि विज्ञान पढ़कर ही उसका जीवन रचना या समाज रचना में सदुपयोग नहीं हुआ तो विज्ञान का अध्ययन भी निष्फल है। इसलिये कहा जाता है—Art is rootless without science & science is fruitless without art. किसी भी विषय के व्यवस्थित-नियमबद्ध अध्ययन को विज्ञान कहा जाता है और उसी के सुंदर सदुपयोग को कला कहा जाता है। जैसे भाषा विज्ञान एक विज्ञान है किन्तु भाषा का सुंदर प्रयोग एक कला है। तर्कशास्त्र का शास्त्रीय अध्ययन एक विज्ञान है, किन्तु सत्य की खोज के लिये तर्क का सदुपयोग करना एक कला है। नीतिशास्त्र का नियमों और शास्त्रों में अध्ययन एक विज्ञान, किन्तु स्वयं नैतिक आचरण द्वारा जीवन एवं समाज को सुंदर-सदाचारी बनाना एक नैतिक व्यवहार की कला है। जैसे एक अच्छी माँ बच्चे के प्रति व्यवहार की कला बहुत अच्छी तरह जानती है किन्तु बाल-मनोविज्ञान अथवा मातृ-मनोविज्ञान पर ग्रंथ नहीं लिख सकती, दूसरी ओर ग्रंथ लिखने वाले लेखक व्यवहार की कला में खोटे हो सकते हैं। बैजु बावरा जैसा एक निर्धन गायक संगीतशास्त्र पर व्याख्यान भले न दे सके किन्तु संगीत की जो कला वह जानता है वह बड़े से बड़ा संगीतशास्त्रज्ञ भी नहीं जानता होगा। भवन निर्माण कला (स्थापत्य कला), संगीतकला, मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्यकला, काव्य कला सभी एक-दूसरी से उत्तरोत्तर अधिक सूक्ष्म एवं अधिक ललित बनती जाती हैं। इसलिये उनका प्रभाव भी अधिक व्यापक होता जाता है। जैसे—

अवसी पिथोरा लाट दिवस कोऊ ढही जै है,
किन्तु चन्द्र की सुजश छटा छिटकी रहै।

अकबर को वर कोट जगत में विस्तृत भारी,
किन्तु तुलसीदास अमरता के अधिकारी।

एक दिन पृथ्वीराज द्वारा निर्मित पिथोरालाट (कुतुब की लाट) अवश्य गिर जायेगी। किन्तु कवि चन्द्र वरदाई के काव्य की सुंदर चांदनी धरती पर सदा चमकती रहेगी। अकबर का आगरा किला निश्चय ही बहुत बड़ा एवं भारी है किन्तु वह विशाल पत्थर का किला भी गोस्वामी तुलसीदास की अमरता की तुलना नहीं कर सकता। पिथोरालाट और आगरा का किला भवन-निर्माण कला के उत्तम मानक हो सकते हैं, किन्तु वे चन्द्र वरदाई एवं गोस्वामी तुलसीदास की साहित्य-कला के सम्मुख तुच्छ प्रतीत होते हैं।

बिहार प्रांत को न कभी चन्द्रगुप्त-चाणक्य ने बिहार कहा, न बुद्ध-महावीर ने, न अजातशत्रु ने, न सम्राट् अशोक ने। तब इस प्रदेश का नाम मगध देश था। मगध का उल्लेख वेदों में भी मिलता है।

मगं दोषं दधाति वा मग+धा+क। वामन शिवराम आप्टे के संस्कृतकोश के अनुसार दोषों को धारण करने वाला मगध देश है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी लिखा है—

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे।
मगहँ गयादिक तीरथ जैसे।। अयो. 42/7

कैकेयी के बुरे मुख में शुभ वचन कैसे लगते हैं जैसे मगधदेश में गया आदि तीर्थ। प्रारम्भ में अनार्यों की भूमि तथा गयासुर जैसे राक्षसों का राज्य होने के कारण इस भूमि की निंदा की गयी। फिर यहाँ बौद्ध धर्म और जैन धर्म द्वारा यज्ञनिंदा और वेदनिन्दा के कारण भी आर्य लेखकों ने यह लिखना प्रारम्भ किया कि मगध में प्रवेश करने से भी पुण्य का क्षय हो जाता है। बाद में मगध का साम्राज्य अखिल भारत में हिन्दूकुश से कलिङ्ग तक हो जाने पर और सनातन धर्म के यज्ञ, याज्ञ आदि की प्रतिष्ठा हो जाने पर मगध की प्रतिष्ठा भी बढ़ गई। यहाँ के कवि-चारण-भाट अन्य राज्य दरबारों में संस्कृत एवं पाली भाषा में सुंदर काव्यमय प्रशस्तियाँ गाया करते थे।